यहां इश्क पान की तरह पेश किया जाता है। यही तो खासियत है दुलहन बाज़ार की। पुराना शौकीन है, तो काली पत्ती··पीली पत्ती···वगैरह-वगैरह। नया है, तो हीरा-मोती···पान बहार···इलायची यानि मीठा पान। इन्हें इस बात की खूब पहचान है कि कौन तीखा पसन्द करता है, कौन मीठा··· इनके पैरों में घुंघरू बंधते हैं, जब ये चुप हो जाते हैं, लोगों के हाथ तंग हो जाते हैं··· और जब लोगों के हाथ तंग हो जाते हैं, इन के यहां चूल्हा नहीं जलता। दरअसल, ये घुंघरू नहीं, जंजीर···इनका सुख, इनका दुख, इनके आंसू, इनकी हंसी—यही जंजीर है। जब भी यह पैरों में बंधती है, इन्हें रोटी देती है···और···और यही जंजीर इन्हें घुन की तरह खाती भी रहती है।

···वेश्या-जीवन पर, कथाकार राबिन शॉ पुष्प का मार्मिक उपन्यास पढ़िये—'दुलहन बाज़ार'···

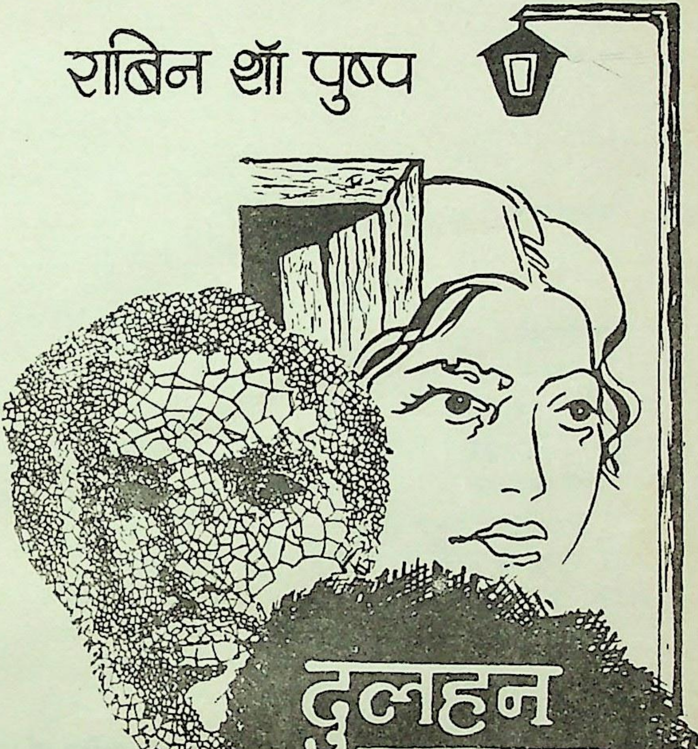
HEADQUARTERS
No ...
Date ....
16 Corps Artillery Brigade

HEADQUARTERS
No ....
Date ....
16 Corps Artillery Brigade

दुलहन बाज़ार

जगतराम एण्ड सन्ज़

रबिन शॉ पुष्प



© राबिन शॉ पुष्प

मूल्य : बीस रुपये / दूसरा संस्करण : 1986 / आवरण : नसीम
प्रकाशक : जगतराम एण्ड सन्ज, IX/221, मेन रोड, गांधीनगर, दिल्ली-31
मुद्रक : संजीव आफसैट प्रिन्टर्स, कृष्ण नगर, दिल्ली-5।

DULHAN BAZAR (Hindi Novel)
By
Robbien Shaw Pusp

Price : Rs. 20-00

समर्पण

अपनी ज़िन्दगी की
पहली लड़की को,
जिसने कहा था—
सेल्फ आइडेन्टिटी के लिये
कहानियां लिखो,
और जब लिखने लगा…
तो अपनी किसी भी पुस्तक की
एक भी प्रति
उसे नहीं दे सका…

—राबिन शॉ पुष्प

एक

यहां इश्क पान की तरह पेश किया जाता है। यही तो खासियत है, दुलहन बाजार की।···पुराना शौकीन है, तो काली पत्ती···पीली पत्ती वगैरह-वगैरह। नया है, तो हीरा-मोती···पान बहार···इलायची यानी मीठा पान। इन्हें इस बात की खूब पहचान है, कि कौन तीखा पसन्द करता है, कौन मीठा। अब दो साल पहले, सन्नो ने सिरिल के आगे इश्क का पान पेश किया या नहीं, कहा नहीं जा सकता। और किया, तो तीखा या मीठा—इसका भी मुझे सही पता नहीं।

वैसे, दो साल पहले सिरिल अपनी मां और बहन के साथ इस बाजार में आया। आप कुछ ऐसा-वैसा नहीं सोचिये। पिता की मृत्यु के बाद, हालात कुछ ऐसे हुए कि गांव छोड़ना पढ़ा। इस शहर में मकान की तलाश में भटकता रहा। जाकर इसी मुहल्ले में मकान मिला। नीचे एक कमरा। ऊपर दूसरा। नीचे वाले को उसने स्टूडियो बना दिया। ऊपर रहने-सोने के लिये। फोटोग्राफी से दाल-रोटी चलती। पेंटिंग से मन हल्का होता। गाहे-बगाहे पोर्ट्रेट के भी आर्डर मिल जाते। जब पोर्ट्रेट का आर्डर मिलता, तो सिरिल कुछ ज्यादा ही खुश होता। लकड़ी के फ्रेम पर, बड़े यतन से कैन्वस ठोंकता। पेंसिल से स्केच बनाता। फिर रंग और ब्रश···शुरू-शुरू में उसे लगता था, कि इन वेश्याओं का जीवन भी कैन्वस की तरह है—जादुई कैन्वस की तरह। हर रात, इस कैन्वस पर लोग इश्क-मुहब्बत के खाके खींचते हैं, सुबह सब गायब। फिर वही खाली-खाली, सादा-सादा कैन्वस। मगर सन्नो···? और सन्नो के बारे में सोचते-

सोचते, बजाय ग्राहक की तस्वीर के, वह कभी पांवों में घुंघरू, कभी सारंगी, कभी तबले के चित्र बना देता। यह सब शुरू-शुरू में होता था। अब नहीं !

पहले, एक बात और होती थी।

जब वह किसी काम से बाजार की तरफ निकलता था, तो अक्सरहां चौराहे पर बनी त्रिमूर्ति के आगे ठहर जाया करता था। त्रिमूर्ति यानी तीन शेरों वाली मूर्ति। उसे ऐसा लगता था, ये तीनों शेर इस चौराहे पर पहरा दे रहे हैं। एक दिन ये शेर, अपना असली रूप अख्तियार कर लेंगे। और एक न एक दिन, ऐसे लोगों को फाड़कर खा जायेंगे, जो रात के अंधेरे में नारी शरीर को नोंच-नोंचकर खाते हैं।

यह पहले की बात है। तव सिरिल ऐसा सोचा करता था। मगर अब, उसने इस त्रिमूर्ति का दूसरा ही अर्थ लगा लिया है यानी जिस जगह ये शेर दिखें, समझ लो, उस इलाके में, रात में शहर के बड़े-बड़े शेर निकलते हैं···फिर चीर-फाड़, खून-गोश्त···और पेट भर जाने पर लौट जाते हैं अपनी-अपनी मांद में। ये शेर कोई निशान नहीं छोड़ते। सुबह, पता ही नहीं चलता कि कौन शेर किधर से आया था ! अब इस त्रिमूर्ति से सिरिल को डर लगने लगा है। कहीं शहर-भर के शेर सन्नो को फाड़-कर न खा जायें। इन्हीं शेरों की वजह से, दोनों के बीच कुछ खट-पट भी हो जाया करती है।

आज मैं, आपको इसी सिरिल और सन्नो उर्फ तबायफ शहनाज की कहानी सुनाने जा रहा हूं। अगर सिरिल नहीं आता इस मुहल्ले में, तो क्या सन्नो की वही कहानी होती, जो पहले कहीं जानी थी। एक मामूली से आर्टिस्ट के आ जाने से कितना कुछ बदल गया इस कथा में। तो कहानी शुरू करूं···?

मगर एक बाधा आ गयी है। यह बाधा है—श्रीकान्त ! उसने यहां आकर, 'गायिका-रक्षा-समिति' नहीं बनायी होती, तो क्या इतना कुछ घटित हो जाता इस दुलहन-बाजार में ! और इवा यानी इवलिन यानी सिरिल की छोटी बहन—उसके कारण भी बहुत कुछ गड़बड़ हो गया है। फिर किसकी कहानी कहूं—सन्नो, सिरिल, श्रीकान्त या इवा की ? या

फिर सब की ? यदि सब की—तो प्रारम्भ किससे करूं ? कुछ समझ नहीं पा रहा हूं। सामने सादे पृष्ठ पड़े हैं, खाली-खाली कैन्वस की तरह।

सादा कैन्वस !

चलिये, इसी से कहानी शुरू करता हूं। सादे कैन्वस पर सिरिल एक पेंटिंग बनाता है···।

दो

चित्रकला प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार प्राप्त कर सिरिल घर की ओर लौट चला। अधरों पर मुस्कान और आंखों में चमक। उसकी कला का समुचित मूल्यांकन हुआ था···'डोली और दुल्हन' पर प्रथम पुरस्कार। फूल-सी नाजुक नारी। पलकों में बोलते हुए आंसू। हथेली पर मुसकाती हुई मेंहदी। मांग में लजाता हुआ सिंदूर और अधरों पर चांदनी-सी हंसी। चार कहारों के कंधों पर एक जिन्दगी, जा रही है किसी दूसरे को नया जीवन देने। और करीब ही खड़ी है एक दीवार···गिरती हुई। बिल्कुल अकेली···पराजिता-सी।

सिरिल खुश है।

आज उसकी मां, उसकी बहन और शायद सन्नो की भी खुशियों का ठिकाना नहीं रहेगा। तभी वो उदास हो जाता है। वह एक मामूली-सा आर्टिस्ट है, जो पैसों की तंगी से एक गंदे से बाजार में, एक घटिया सी दुकान किए बैठा है। प्रथम पुरस्कार प्राप्त कलाकार···मगर इतनी भी आमदनी नहीं कि मां बहन का पेट भर सके···एक मकान के दो हिस्से··· ऊपर घर, नीचे स्टूडियो। वैसे बहुत सारे पड़ोसी हैं, मगर जो सबसे अच्छा है, दरअसल वही सबसे बुरा है।

अभी वह स्टूडियो में घुसा ही था कि सन्नो दौड़ती हुई आ गई। पांवों में घुंघरू। एक संगीत उभरा और उसके ठहरते ही थम गया।

सिरिल ने जीती हुई ट्रॉफी मेज पर रख दी और पलटते हुए कहा—

"कितनी बार मना किया घुंघरू-उंगरू पहनकर यहां मत आया करो। ये तुम्हारा कोठा नहीं, एक आर्टिस्ट का स्टूडियो है। लेकिन तुम्हें कुछ याद रहे तब न।"

सन्नो हल्के से मुसकुराई—"वैसे, कुछ चीजें याद रहती हैं···जैसे तुम।"—और वहीं मेज पर बैठकर अपने पैर हिलाने लगी। घुंघरूओं की आवाज कमरे में भर गई।

सिरिल ने थोड़ी नाराजगी से कहा—"प्लीज सन्नो! इसे बन्द करो। घुंघरूओं की आवाज़ से मेरा सर फटने लगता है।"

—"मगर सिरिल, हमारे उस्ताद जी तो कहते हैं कि घुंघरूओं की आवाज हमारे लिए अजान से बढ़कर है।"

सिरिल की आवाज में और तल्खी आ गई—"जाने किस पाप की सजा है कि इसी मोहल्ले में मकान मिला···और मकान भी ऐसा···"

—"जिसकी दीवार और तवायफ की दीवार एक है। बस, एक दीवार का फर्क! लेकिन यह फर्क कितना बड़ा है सिरिल···मैं जानती हूं, कि तुम एक गरीब फनकार हो। अपनी मां और छोटी बहन को लेकर इस गन्दे से मोहल्ले में रहने के लिए मजबूर हो···लेकिन मेरा यकीन करो, मैं तुमसे भी ज्यादा गरीब और लाचार हूं। तुम सिर्फ अपना फन बेचते हो और मैं?···मैं तो फन के साथ-साथ अपने आप को भी बेच देती हूं। यह जग बहुत बड़ा व्यापारी है सिरिल। एक तरफ पानी और रंगों से बनाई हुई तुम्हारी तस्वीरें खरीदता है तो दूसरी तरफ, लहू और मांस से बनाया हुआ खुदा का फन। अब मैं सब समझ गई हूं···सब समझ गई हूं सिरिल···किसी दिन अगर गलती से खुदा इस जमीन पर आ जाएगा, तो यह जग उसका भी सौदा कर लेगा।"

—"तुम कौन-सा सौदा करने आई हो?"—सिरिल ने पहली जैसी ही नाराजगी से पूछा।

—"जमाने के आगे गिरवी रखी हुई चीज क्या सौदा करेगी सिरिल? ···मैंने अभी-अभी खिड़की से देखा कि तुम आ रहे हो सो रियाज बन्द कर तुम्हें मुबारकबाद देने आ गई।"

—"शुक्रिया।"

सन्नो ने ट्रॉफी को हाथों में लेकर चूम लिया—"बहुत ख़ूबसूरत तस्वीरें बनाते हो। मेरी भी एक बना दो न···।"

—"मेरे पास वक्त नहीं है।"

—"लेकिन एक छोटा-सा जवाब देने का तो वक्त होगा।"

—"बोलो।"

इस बार गम्भीरता से सन्नो ने प्रश्न किया—"तुम ईसाई हो न।"

—"हूं।"

—"और शायद तुम्हारे ही मजहब में हजरत ईसा ने फरमाया है, कि जो एक गाल पर चांटा मारे उसकी तरफ दूसरा भी···"

एक गन्दी लड़की से ईसा के वचन सुनकर सिरिल के मुंह में कड़वाहट भर गई—"देखो, मेरा वक्त जाया न करो। अब तुम इतनी गिर गई हो कि···"

—"थूकने को भी जी नहीं चाहता, यही न! मगर मैं उठी ही कब थी सिरिल, इस समाज ने तो इस बुरी तरह से कमर तोड़ रखी है कि उठना चाहकर भी उठना मुमकिन नहीं। सभी तो रात के अंधेरे में मुहब्बत करते हैं, मगर दिन के उजाले में नफरत। एक तुम थे, सो तुमने भी···!"—और सन्नो सिसकने लगी।

—"जानते हो सिरिल, तुम्हारी शराफत-भरी दुनिया की मैंने असली सूरत देखी है। मेरी मां ख़ून के इल्जाम में जेल में है···और मैं, कानून के नाम पर वकील, मुख्तार, नाज़िर, पेशकार···सब को रुपये देती हूं। रुपये के साथ-साथ अपने आप को भी चढ़ा देती हूं। मैं जानती हूं, मेरे इन्कार का अन्जाम क्या होगा···सिरिल, मुझे इस व्यापारी जग की कोई ऐसी दुकान के आगे खड़ा कर दो, जहां मैं अपनी बोटी-बोटी बेच दूं, ख़ून का एक-एक कतरा निचोड़ दूं···मगर बदले में मुझे एक मां चाहिए···सिर्फ एक मां।"—और सन्नो फफक कर रोने लगी।

—"मत रो सन्नो, मैं आंसूओं से डरता हूं।"

—"इसी का तो अफसोस है कि तुम कायर और बुजदिल हो। डूबने वाले के लिए हमदर्दी का ये मानी नहीं सिरिल, कि उसके साथ बचाने वाला भी डूब जाए।"

—"में हकीकत में कमजोर हूं सन्नो।"

—"तभी तो। मगर आज के जमाने में कमजोरों को जीने का कोई हक नहीं। मेरी मां जेल में है। उसे छुड़ाने की जरूरत है। इस काम के लिए रुपयों की जरूरत है। और इसी 'जरूरत' के आगे मैं कमजोर साबित होती हूं, तभी तो लोग खुलकर मेरे जिस्म से खेलते हैं।"

सिरिल ने उसके आंसू पोंछ दिये।

—"सच मानो सिरिल, तुम्हारी दुनिया मेरी दुनिया से बहुत बुरी है। फर्ज करो, कल तुम्हारी मां जेल में···उसे छुड़ाने के लिए तुम बड़े से बड़ा पाप भी कर सकते हो, तुम्हारे लिए खून भी जायज है···मगर मैं, मैं तो सिर्फ एक औरत हूं, वह भी गन्दी। मुझे तो बस इतना हक है कि वही करूं, जिससे थूकने वालों को और भी मौका मिले···बताओ सिरिल, मेरा गुनाह क्या है ?"—एक बार वह फिर फफक कर रोने लगी।

सिरिल ने उसे बांहों में भर लिया—"तुम्हारा गुनाह सिर्फ इतना है सन्नो, कि तुम शेवंती का फूल नहीं जो कांटों से रहित होता है। तुम तो गुलाब का फूल हो, जिसमें कांटे ही कांटे होते हैं···मगर साथ में, आत्मा को शांति देने वाली खुशबू भी। अब तुम मुझे और भी अच्छी लगने लगी हो। तुम उन पढ़ी-लिखी तमाम लड़कियों से बेहतर हो जो शराफत का बाना पहन, शराफत को डसती हैं। जो क्लब और होटलों में अस्मत का सौदा करती हैं। मजबूरी और विवशता से नहीं, बल्कि फैशन के लिए, जिस्मानी भूख के लिए। जो बिक जाया करती है—पाउडर, क्रीम, स्नो और नयी-नयी चीजों के लिए···तुम्हारी तरह मां के प्रेम पर कुर्बान नहीं होती।"

शहनाज के गालों पर प्रसन्नता के आंसू छलक आए—"क्या तुम भी इस दोजख से नहीं उबारोगे मुझे, मेरे खुदा!"

—"मैं और खुदा! अरे, नहीं-नहीं···"

—"नहीं क्या, तुम तो मेरे लिए खुदा से भी बढ़कर हो सुन कर भी कि मैं बहुत सस्ती हो गई हूं, तुम कभी मेरी मजबूरी से फायदा उठाने नहीं आए। बोलो न, मैं इसी आग में जलूं ? मैं जलने को तैयार हूं, मगर मेरे छोटे-छोटे भाई बहिन···"

—"नहीं सन्नो, तुम्हें अपने खुदा पर विश्वास करना चाहिये।"

—"सो तो मरते दम तक करूंगी।"—और सन्नो तेजी से स्टूडियो से बाहर आ गई।

सिरिल की जीतने वाली प्रसन्नता कुछ और प्रसन्न हो गई। आज बहुत दिनों के बाद वह सन्नो से खुल सका था। मन में एक नाराजगी थी, जो धुल गई। इसी खुशी में वह मां और इवा से मिलने ऊपर चला गया···।

तीन

कैदी ब्रश !

···हरे, पीले, नीले—सभी रंगों को उठा-उठा कर कैन्वस पर लगाता हुआ, उंगलियों के मध्य बन्दी ब्रश।···और इसी ब्रश की तरह सिरिल का मन भी जाने कितने खयालों में बंधा-बंधा कशमकश का अनुभव कर रहा था। उसने सोचा, सारा मुहल्ला जानता है कि सन्नो की मां ने दरोगा का खून किया और इसी वजह से जेल में है। फिर सन्नो अपनी मां को छुड़ाने का प्रयास क्यों कर रही है? मुजरिम को सजा मिलनी ही चाहिए। —और फिर ब्रश चलने लगे। साथ ही उसका मन पुनः आगे को झुकने लगा। वह सन्नो को चाहता है। परन्तु मां? क्या मां यह गवारा करेंगी कि उसका बेटा एक तवायफ को बहू बना कर ले आये! उसका बेटा एक खूनी की बेटी से शादी रचा ले! ···कभी नहीं, मां का हृदय इस सदमे को सह नहीं सकेगा।

तभी सीढ़ियों पर आहट जगी। मां दूध लेकर आ रही थीं। सिरिल ने उठ कर दूध का गिलास थाम लिया। कुर्सी पर बैठते ही मां भुनभुनाई —"कमबख्त सीढ़ियां चढ़ते-चढ़ते कलेजा दर्द कर जाता है। बेटे, तुझे मां की कोई चिन्ता नहीं।"

सिरिल समझ गया। आगे आने वाले शब्द उसके लिए स्पष्ट हो गये। मां शादी का जिक्र करेंगी—वह जान गया। और मां ने बात जोड़ी—

"बेटे, सचमुच तू मां की चिन्ता नहीं करता !"

—"करता तो हूं मां, मैं···"

—"खाक करता है ! एक युग से बहू के लिए तरस रही हूं। मगर तुझे फिक्र हो, तब तो। इच्छा तो थी कि बहू को आशीष देकर दम तोड़ूं।···"

—"मां तुम क्यों आती हो। इवा को भेज दिया करो।"

—"वह बेचारी तो पढ़ रही है।"

—"पढ़ रही हैं ? ··हर वक्त पढ़ाई। कम से कम दूध तो पहुंचा ही सकती है। और हां, अब दूध बन्द कर दिया जाना ही ठीक रहेगा।"

—"सो क्यों ?"

—"बेकार का खर्च" !

—"खर्च क्या, सेहत के लिए दूध बहुत जरूरी है। आजकल वैसे भी तू खाता ही क्या है ? दूध नहीं पियेगा, तो बदन टूट जाएगा।"

—"अच्छा बाबा, पीऊंगा !" और वह गटागट दूध पीने लगा। मां ने आवाज़ दी—"इवा बेटी, इवा ! ···दराज से वह बड़ा लिफाफा तो निकाल ला।"

ऊपर से एक जवान स्वर आया—"अभी आई, मां !"

मां ने पुनः कहा—"बेटे, तीन-चार जगहों से रिश्ते आये हैं···अब तो तेरे मन की जाननी है।"

इतने में इवा आ गई—"लो मां, यह रहा लिफाफा।"

—"यह रहा क्या ! भैया को दे, तेरे लिए भाभी पसन्द करेगा।"

इवा ने लिफाफा खोल कर फोटो निकाले। फिर एक चुन कर बोली —"मुझे तो यह भाभी पसन्द है। क्यों भैया, कैसी रहेगी यह ?···"

सिरिल मौन रहा। फिर वह मां की ओर मुड़ी—"मां, भैया तो कुछ बोलते ही नहीं। तुम्हीं देखो न।"

मां ने बिना देखे ही कहा—"मैं क्या कहूं। शादी तो तेरे भाई की है ···वही पसन्द करे।"

सिरिल को अवसर मिला—उसने इवा की चुटिया पकड़ ली। खींच कर बोला—"शादी मेरी होगी और पसन्द तू करेगी ?"

—"हूं।"

—"हूं क्या, बड़ी आई पसन्द करने वाली। जब तू करेगी न, तो अपने लिए पसन्द कर लेना।"—उसने चोटी और जोर से खींची। इवा चिल्लाई—"देखो मां, आह!"···सिरिल ने उसे छोड़ दिया। वह भुनभुनाती हुई भागी—"भैया बहुत खराब है, भाभी आयेगी तो उसकी चोटी खींच-खींच के···।" सिरिल ने मुंह बनाकर चिढ़ाया और वह भी उसी रूप में चिढ़ा कर ऊपर फुर्र हो गई।

मां दूध का खाली गिलास लिये खड़ी थी। सिरिल का मन हुआ वह मन की बात कह दे। मगर साहस ही नहीं हुआ। कहीं मां नाराज न हो जायें। यह दूसरी बात है कि सन्नो इस घर में आती-जाती रहती है। उसके सम्बन्ध भी बुरे नहीं। उसके आने-जाने पर मां की ओर से कोई रुकावट भी नहीं।···परन्तु···मां यह कैसे सहेगी कि उसका दुलार-प्यारा का पाला सपना, उसकी उम्मीदों में उसके सामने ही आग लगा दे—एक वेश्या को ब्याह कर! उसकी हिम्मत जवाब देने लगी और वह हारे हुए जुआरी की तरह मार्ग सोचने के इरादे से हट गया।

मां ने टोका—"बेटे···"

सिरिल जैसे सोते से जग गया। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या उत्तर दे! मां ने उसकी आंखों में इस प्रकार देखा जैसे एक भिखारी, देने वाले की ओर याचना भरी नजरों से तक कर कहता है—"दाता, मेरी झोली भर दो न।"

सिरिल ने भीगते हुए कहा—"मां!···"मगर बात जबान में ही दबी रह गयी। कुछ स्वस्थ होकर उसने कुछ कहने के लिए मुंह तो खोला, मगर बात का रूप उसने एकदम बदल दिया—"मां, अभी तो इतना खर्च है। बेकार की एक मुसीबत को घर में और लाना···इवा पढ़ रही है। अपनी यह पढ़ाई पूरी कर ले, तो पहले उसे विदा कर लूं, फिर अपने बारे में सोचूंगा।"

मां गिलास लिये, ओर खाली हो कर ऊपर जाने लगी। सिरिल ने उन सुन्दरियों के चित्रों को एक नजर देखा, फिर मेज की दराज में उन्हें रख कर उसने शान्ति का अनुभव किया। तभी दूसरी सीढ़ी पर पैर रख

कर मां ने कहा—"बेटे, मैंने कभी जबरदस्ती नहीं की। मैं तो केवल इतना जानती हूं, कि औरत एक मूरत होती हैं। मर्द जब उसे घर में बिठा लेता है, तब घर, घर नहीं रहता, मंदिर बन जाता है। मगर बेटे, एक ही बात कहूंगी, मंदिर की पवित्रता का ध्यान रखना..."

चार

इवा की तबीयत अचानक खराब हो गई। कल शाम ही वह ठीक थी। सिरिल से उसकी ढेर सारी बातें हुई थीं—दोनों, खुशी-खुशी सोने गये थे। परन्तु सुबह दातुन करते समय खांसी उठी। फिर थोड़ी-सी खांसी, बढ़ गयी। इवा ने शिकायत की—"थोड़ा-थोड़ा दर्द छाती में पैठ गया।" मां ने समझा ठण्ड लगी होगी। उन्होंने गाय का घी गर्म कर छाती पर मल दिया। परन्तु इससे भी उसे राहत न मिली। शाम होते-होते उसकी पीड़ा और बढ़ गई। कुछ हल्का-हल्का ज्वर भी चढ़ आया। अब सिरिल को चिन्ता हुई। उसने पड़ोसी के एक लड़के को डाक्टर के पास भेजा।

वह इवा की बगल में बैठ गया। मां भी वहीं निकट में थी। तभी सन्नो आ गई। आते ही वह इवा के सिरहाने गई। उसका माथा छूकर बोली "या अल्लाह।...इतना तेज बुखार। इसकी तबीयत मुआफिक नहीं और हमें खबर तक नहीं।"

सिरिल ने धीरे से कहा—"दिन भर तो ठीक ही थी, बस अभी-अभी जरा...।"

इवा चुपचाप पड़ी थी। सन्नो उसके करीब बैठ रही। उसने कहा—"वह तो लल्लू था, जिसने बताया। डॉक्टर के यहां गया है ?"

—"हां!"

सन्नो चुप।

—"तुम अभी जाओ न सन्नो! फिर आ जाना।"—सिरिल बोला।

—"क्यों ?"

—"यूं ही, कुछ नहीं।"

—"जो तुम कहना चाह रहे हो, वह मैं समझ गई। मगर मैं तो महफिल उठा कर आई हूं। भला इवा के सामने रईसों की क्या बिसात। उन्हें तो चलता कर दिया है।"

मां ने इस बार पलकें उठा कर, गिरा लीं। इवा ने पानी की मांग की। मां उठने लगी। बीच में ही सन्नो उठ गई—"आप रहने दें, मैं तो आ ही गई हूं।"—उसने सहारा देकर इवा को पानी पिला दिया।

तभी लल्लू आ गया—खाली-खाली। सिरिल ने पूछा—"क्यों लल्लू, डाक्टर नहीं आये ?"

—"नहीं। कहने लगे कि ड्राइवर बीमार है। अगर टैक्सी लेकर आओ, तो चल सकता हूं।"

—"लल्लू, तो रिक्शा क्यों नहीं ले गया था ?"

—"मैंने तो रिक्शा के लिये कहा, वह कहने लगे कि उस बाजार में रिक्शा पर देखकर लोग कुछ का कुछ अर्थ लगा लेते हैं। अगर इतना ही जरूरी है, तो मोटर ले आओ। हां, रात की फीस भी दुगनी बताई है।"

सिरिल बर्फ की तरह जम गया। टैक्सी का किराया···दुगनी फीस ! उसका सिर चकराने लगा। इवा···?

उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे। मां तो एकदम फीकी-फीकी हो गईं। तभी सन्नो उठ कर बाहर आ गई। सिरिल उसी प्रकार अपनी गुत्थियों में उलझा रहा। मां उसी प्रकार भीगती रहीं। और इवा ? उसे क्या पता कि उसके लिए सदा प्यार लुटाने वाले, उसकी बीमारी के लिए डाक्टर तक बुलाने में असमर्थ हैं।

तभी लल्लू बाहर आया। सन्नो उसी की प्रतीक्षा कर रही थी।

इवा को जोरों की खांसी उठी, शरीर और तपने लगा। मां तो बहुत ही घबरा गईं। बेचारी कभी इवा के पास जातीं, कभी बाइबिल के। सन्नो इवा से सट गई। उसका सिर सहलाने लगी। इसी बेचैनी में इवा ने लगभग पन्द्रह मिनट गुजार दिये।

बाहर, मोटर रुकने की आवाज आई। लल्लू डाक्टर साहब को

लेकर भीतर आ गया। सिरिल और मां एकदम चौंक गये।

डाक्टर ने इवा की परीक्षा की। फिर कुछ विचार कर उचित दवाइयां लिख दीं। कहने लगे—"मंगाकर इन्हें दीजियेगा। हमारे दवाखाने में अच्छी दवाइयां मिलती हैं, वहीं से मंगवाना ठीक रहेगा।" फिर उन्होंने पानी गर्म करने को कहा। इन्जेक्शन आदि देकर वह जाने को हुए तो सिरिल सहम गया···अब वह फीस कहां से लाये और वह भी दुगनी !

डाक्टर साहब सीढ़ियां उतरने लगे। बैग उठाये वह कांपते कदमों से खुद भी उतरने लगा। उसका जी हो रहा था, कि सीढ़ियां कभी भी खत्म न हों, और वह डाक्टर को लेकर कभी भी नीचे नहीं पहुंच पाये। मगर खत्म होने वाली सीढ़ियां, आखिर खत्म हो ही गईं और वे लोग स्टूडियो में पहुंच गये। उसकी सूरत देखकर डाक्टर ने कहा—"देखिए, अब घबराने की कोई बात नहीं। मैं वक्त पर आ गया वरना··· खैर, अब फिक्र की जरूरत नहीं। हां, फीवर जरा हाई है···सिर पर ओडिक्लोन की पट्टी देते रहें। सुबह तक सब ठीक हो जायेगा।"

—"डाक्टर साहब···" आवाज बीच में ही रुक गई। काश ! धरती फट जाती और वह उसमें समा जाता। तभी सन्नो आ गई। उसने परे हटा कर कहा—"तुम्हें इवा बुला रही है।"

—"मगर इनकी फीस···।"

—"तुम चलो न, तुम्हें इवा बुला रही है।"

सिरिल ऊपर जाने के बजाय और नीचे आ गया। डाक्टर साहब मोटर तक पहुंच गये थे। सिरिल ने करीब जाकर पूछा—"डाक्टर साहब, कुछ सीरियस तो नहीं···?"

—"अरे नहीं-नहीं, हां अभी पीली गोली भेज दूंगा। उसे तीन-तीन घंटे पर देते रहियेगा।" और फिर मोटर गुजर गई।···

दोनों इवा के पास लौट गये। मां सिरिल के निकट आई—"क्या कहा ?"

अब तक सिरिल काफी सम्भल गया था। बोला—"मां, घबराने की कोई बात नहीं। सुबह तक इवा बिल्कुल ठीक हो जायेगी।"

मां उठकर इवा के पास आ गई। वहां पहले से सन्नो बैठी थी। रात काफी जा चुकी थी। मां ने कहा—"सन्नो, अब तू जाकर आराम कर बेटी! तेरे भाई-बहन भी तो जाने कैसे पड़े होंगे।"

सिर उठाकर सन्नो ने मां को देखा। फिर बोली—"नहीं अम्मा, आप जाकर सो जायें। मैंने बच्चों को नौरी के हवाले कर दिया है। वे तो चैन से सो रहे होंगे।"

—"नहीं-नहीं, तू जाकर सो जा। रात बहुत गुजर गई।"

—"अम्मा, आपकी भी तो तबीयत ठीक नहीं रहती। फिर रातभर जागना आपके लिए मुनासिब नहीं। आपको काफी आराम की जरूरत है।"—और तब सन्नो की जिद पर मां को सोने के लिये जाना ही पड़ा।

वह रात-भर पट्टियां देती रही।

सुबह इवा का ज्वर उतर गया। वह काफी हलका-हलका अनुभव कर रही थी। सन्नो अपने घर चली गई। मां प्रसन्न थीं। सिरिल खुश था।···

आठ-नौ बजे के करीब वह पुनः आ गई। मां ने पूछा—"तू फिर आ गई?"

—"हां, बच्चों को नाश्ता करा कर आ रही हूं।"—और वह इवा की बगल में बैठ गई। मां घर के कामों में लग गई। इवा और वह आपस की बातों में खो गये! तभी सिरिल ने आवाज दी—"जरा इवा का बुखार तो देख लेना।"

सन्नो ने थर्मामीटर लगा दिया। इतने में सिरिल आ गया—"देखा?"

—"हां।"

—"देखो तो कितना है।"

सन्नो चुपचाप खड़ी रही। सिरिल पुनः बोला—"अरे देखो न।' इस बार सन्नो सकुचा कर बोली—"मैं देखना नहीं जानती।"

सिरिल मुसकराया—"ओह, तो यह बात है! हजार बार कहा कि पढ़-लिखकर जरा इन्सान बन जाओ। सब बेकार···बस वही ता···ता ···थइया।"

सन्नो शरमा गई। लजाकर बोली—"पढ़ाते तो हो नहीं, सिर्फ ताना मारते हो।"

—"अच्छा बाबा, पढ़ा दूंगा।"—फिर इवा की ओर मुड़कर बोला—"तू ही देख कितना है।"

"भैया, सौ डिगरी।"

"हूं ··ठीक तो है। शाम तक उतर जायेगा।"—फिर सन्नो की ओर देखकर बोला—"मैं दवा लेने जा रहा हूं। डाक्टर साहब को हाल भी बताता आऊंगा। तुम इवा को वह पीली वाली गोली दे देना।" —और वह चला गया।

सिरिल के जाने के बाद सन्नो इवा के पास बैठ गई। इससे उसका जी कुछ हल्का हो गया। दोनों सखियों-सी आपस में गुन-गुन करने लगीं। इतने में रेजी और पादरी साहब आ गये। दोनों सीधे ऊपर आये। इवा, रेजी को देखते ही खिल गई। सन्नो भी सब जानती थी। धीरे से चुटकी काट कर बोली—"आ गया रे···।" इवा लजाकर सिमट गई। सन्नो उठ कर रसोईघर गई और मां को बुलाकर ले आई।

मां ने आते ही स्वागत किया···। नमस्ते बन्दगी के पश्चात् मां चाय बनाने चली गईं और इवा सन्नो को अपने पास बिठाये रही।···दोनों चुप-चुप थीं। पादरी साहब की नजर सन्नो पर पड़ी। रेजी की ओर झुक कर उन्होंने धीरे से पूछा—"क्या यही है वह जिसकी चर्चा ईसाइयों में है?"···रेजी ने स्वीकृति में सिर हिलाया।

सन्नो को बड़ा अजीब-अजीब लग रहा था। वह जाने को उठी। उस के निकट आते ही पादरी साहब ने अपने वस्त्रों को समेट लिया, जैसे वे अपवित्र हो जाते। सन्नो अपने घर आ गई।

कुछ देर बाद वह फिर ऊपर गई, उसे खयाल आया कि इवा को गोली देनी है। दरवाजे पर ही वह ठिठक गई। पादरी साहब के शब्द उसके कानों में पहुंचे—"देखो इवा, तुम्हारा घर एक ईसाई का घर है। मगर तुम लोगों ने एक···मेरा मतलब है, गन्दी औरत को घर में जगह देने का अन्जाम भी बुरा है। सभी ईसाई घरों में इसकी चर्चा है। फिर तुम लोग तो जानते ही हो कि एक सड़ी मछली सारे तलाब के पानी को···

तुम्हारे भाई की भी तो कोई इज्जत है । और फिर, हमारे यहां भी जवान लड़कियां हैं, उन पर बुरा असर पड़ने का अन्देशा है। क्यों रेजी ?" —और उन्होंने रेजी की ओर देखा ।

—"जी पादरी साहब ।"—रेजी ने खुशामद के लहजे में कहा । उसके लिए इन दिनों पादरी की खुशामद आवश्यक थी । वह कैथोलिक था और इवा प्रोटेस्टेंट । दोनों का विवाह तभी सम्भव था, जब पादरी साहब की कृपा दृष्टि होती···सन्नो ठगी सी खड़ी रही । उसकी आंखों में आंसू आ गये ।

पादरी ने पुन: कहा—"तो इवा, तुम अपने भाई से सब कह देना । पूरी जाति को अपवित्र करने से कोई लाभ नहीं ।"

इतने में मां आ गईं । उन्होंने नाश्ते का आग्रह किया । दोनों आगे को सरक गये । मां खुश थीं कि आज पादरी साहब इवा की बीमारी का हाल सुनकर देखने आये । मगर सन्नो···आंखों में मोती लिए लौट चली भारी कदमों से, उसे आज पता चला, कि वह सचमुच गन्दी है··· बहुत गन्दी ।

पांच

नित्य की तरह, आज भी सिरिल उसे पढ़ाने गया । कल नागा हो गयी थी । वह बीड़ा पर गई थी । किसी बड़े आदमी के यहां नाच था । बड़े आदमी···शरीफ आदमी । ये लोग गणिका नहीं नचाएं, तो कौन नचाए ? वह, जो घिस-घिस कर जीवन जीता है और जीवन की परिभाषा तक नहीं जानता···।

वह अन्दर सो रही थी । बाहर बरामदे पर दोनों बच्चे खेल रहे थे । सिरिल को देखते ही मुन्नी दौड़ी आई ।

—"दीदी क्या कर रही है ?"

—"आपा तो सो रही है ।"

—"पढ़ेंगी नहीं ?"

—"नहीं मालूम ।"—सीधा सा जवाब मिला ।

—"अच्छा, आई कब ?"

—"बस, अभी थोड़ी देर पहले । अभी-अभी तो नहा कर सोने गई है ।"

सिरिल ने बाहर से आवाज दी । सन्नो अभी सोई नहीं थी । उसने पुकारा—"भीतर आओ न ।"

सिरिल भीतर आ गया । वह जमीन पर ही लेटी थी । बैठते हुए उसने पूछा, "क्यों, आज पढ़ने का इरादा नहीं है ?"

—"अरे, पढ़ाई तो होती रहेगी, इवा कैसी है ?" सन्नो ने बात उड़ा दी ।

—"एकदम भली-चंगी ।"

—"पाक परवरदिगार की मेहरबानी है ।"

सिरिल ने चिढ़ कर कहा—"मगर तुम्हारी मेहरबानी किताबों पर कब होगी ?"

एक गहरी सांस लेकर सन्नो बोली—"मन तो बहुत करता है, जी में तो आता है कि सारी कि सारी किताबें खत्म कर जाऊं । लेकिन···।"

—"लेकिन ?"

—"लेकिन क्या, यह पढ़ना-वढ़ना अपने बस का नहीं । मन का दुश्मन यह बदन ! थक कर चूर चूर हो गया है । हिम्मत नहीं होती कि उठ कर भी बैठूं ।"

सिरिल ने कहा—"अच्छा, अब तुम आराम करो, मैं जाता हूं ।"

—"अभी ? अभी अभी तो आये हो । दो पल बैठो तो सही । तुम्हें क्या पता कि तुम्हारी नजदीकी से मुझे कितनी राहत मिलती है । सब दर्द घुल जाता है ।"

फिर वह करवट बदलने लगी तो कराह उठी ।

—"क्या हुआ ?"

—"कुछ भी तो नहीं, जरा दर्द है ।"

—"दर्द ?"

वह चुप रही ।

—"कहां ?"

—"क्या करोगे देखकर ?"

—"अब तुम अपना दर्द भी छिपाने लगी हो।"—सिरिल ने व्यंग्य किया।

उत्तर में, वह कुछ बोली नहीं, कांपती उंगलियों से उसने चादर परे हटा दी। पैर रक्त से सना था। सिरिल कांप गया—"अं···!"

—"घबराते क्यों हो, मैं तो नहीं घबराती। क्योंकि हर बार नाच से लौटने पर यही हाल रहता है।"

सिरिल उसके पैरों को देख रहा था···बुरी तरह से छिले चमड़े। उससे देखा नहीं गया। उसने आंखें फेर लीं। इस बार सन्नो को हकीकत पेश करने का मौका मिला—"अभी तुमने नजरें फिराई हैं, क्योंकि वह जख्म है। मेरे जख्म, सच मानो तो कोई देखना पसन्द नहीं करता। मगर कल रात भर मैं नाचती रही···गिर गिर पड़ती। फिर भी किसी ने आंखें नहीं फेरीं। और जब मैं नाचने लायक न रही तब···।"

"तब तुमने नाचना बन्द क्यों नहीं कर दिया ?"

—"बन्द कर देती···कैसे बन्द कर देती ? यदि घुंघरू गूंगे हो जाते, तो तुम्हारे शरीफ कहे जाने लोग बिना कुछ दिये ही न लौटा देते। फिर सिर्फ सट्टे का आसरा करना पड़ता। तब इन छोटे छोटे बच्चों का क्या होता ? अकेली होती, तो खुदकुशी कर लेती, मगर इन बच्चों की खातिर तो जीना है, जिल्लतें सहनी हैं।"

सिरिल कुछ विचार मग्न हो गया। सन्नो बीच में आ गई—"अरे इसमें सोचना ही क्या, सीधी-सी तो बात है। नई अदा, नये अन्दाज में यूं कहो कि —

खुदकुशी से भी बुरी ये जिन्दगी अपनी,
खाक जीना है, कि मरने को तरसते हैं हम,
यूं तो शायर हैं, शहशाह का दिल रखते हैं,
असलियत ये है कि मिट्टी से भी सस्ते हैं हम !

बात बदलते हुए सिरिल ने कहा—"क्या लगा रही हो ?"

"कुछ नहीं। नहा कर आई, तो नींद आ रही थी। चाह कर भी

कुछ लगा न सकी ।"—गहरी सांस लेकर सन्नो ने कहा ।

—"मरहम कहां है ? लाओ, मैं लगा दू ।"

—"छोड़ो भी, आज तुम लगाओगे । मगर यह दर्द बार-बार उभरेगा, उस वक्त कौन लगायेगा मरहम ? मैं तुम्हें कहां से पाऊंगी···कहां खोजूंगी ! यह मेरा अपना दर्द है, खुद ही भुगत लूंगी ।"

—"कल काफी नाचीं ?"—सिरिल ने पूछा ।

—"काफी से ज़्यादा । जब नाचने लायक नहीं रही तो शराब की घूंट पिलाकर गर्मी पैदा की गई और फिर···। जब बेहोश हो गई, तब कहीं शराफत ने दम···"

—"अच्छा सन्नो, अब तुम आराम करो ।"

—"अरे यहां तो आराम एकदम हराम है । आज शाम फिर नाचना है ।"

सिरिल इस बार हंसा—"बाप रे, तुम तो एकदम नेहरूवादी हो । तुम्हारे जैसे दो-चार मिल जायें, तो नेहरूजी के मतों के सम्पादन में अधिक समय लगने से रहा ।"

—"क्या मतलब ?"

—"मतलब-वतलब कुछ नहीं । हां, पायल कैसे···"

—"कैसे, क्या, पहले जख्म पर कपड़े लपेट लूंगी, फिर ऊपर से पायल बाधूंगी ।"

—"परन्तु आज तो तुम्हें नाचना नहीं चाहिए ।"

सन्नो पर गहरी उदासी छा गयी । बहुत ही टूटती हुई-सी आवाज में बोली—"नाचना तो मुझे आज ही क्या, कभी भी नहीं चाहिए । मगर बुलावा तो ऐसी जगह से आया है, जहां न जाने से मां का मुकदमा बिगड़ जायेगा ।"

—"मत जाना ।"

—"तुम नहीं जानते इन्हें···तभी तो ऐसा कहते हो । मगर ये लोग बहुत बुरे होते हैं···बेहद बुरे । जो एक बार इनके पंजे में फंसा सो···।" —वह किसी सताई हुई दुखिया की तरह चुप हो गई, जिसके बोलने की शक्ति भी चली जाती है दर्द-जुल्म सहते-सहते ।

—"हां, तुम ठीक कहती हो···अभी कल ही मैंने पढ़ा कि किसी थाने के एक सिपाही ने किसी औरत से छेड़खानी की और शायद उसके साथ दुर्व्यवहार भी किया। कानपुर का यह माजरा है।···वहां की जनता ने इसका खुलकर विरोध किया है। मगर तुम क्या कह रही थीं ?"

—"कुछ भी तो नहीं।"—वह कुछ छिपाने लगी।

सिरिल का मन छोटा हो गया। बोला—"हां सन्नो, ख़ूब छिपाओ ···मैं होता ही कौन हूं !"

—"नहीं, नहीं, यह बात नहीं। तुम तो यूं ही नाराज़ हो जाते हो। तुम्हें बात अच्छी नहीं लगती इसी से···"

—"मुझे बुरी लगेगी ?"

—"हां, इसीलिए कि मैं बुरी हूं। मेरे काम बुरे हैं।"—और वह फफक-फफक कर रोने लगी। सिरिल जो मर्द होकर भी औरों के आंसुओं में पिघल सकता था, पिघल गया—"बोलो न सन्नो, आखिर बात क्या है···"

—"सिरिल, आज तक जो तुमने जाना नहीं, मगर हजार बार यह हकीकत कचहरी में दुहराई गई और झूठ कह-कहकर भुला दी गई। फिर भी तुम से कह रही हूं···उस वक्त तुम लोग यहां नहीं आये थे। मेरी उमर 14-15 की रही होगी। एक रात, पुलिस के एक अफसर आये। उस वक्त हमारी भी इज्जतदारों में गिनती होती थी। हम सिर्फ नाचना जानती थीं। हम से मेरा मतलब है, मां से। मेरी अम्मा महफिल सजाती थीं और मैं तो सिर्फ बैठना ही सीख रही थी। हमारी बिरादारी में भी दो हिस्से हैं। एक तो वे, जो सिर्फ नाचने-भर का पेशा करती हैं—नाचना और गाना। और दूसरा हिस्सा वह है, जो जिस्म का सौदा कर रोटी कमाता है।···तो हमने उस अफसर को पनाह दी। रात भर उसने सिर्फ सोने की जगह मांगी, क्योंकि हम रात में किसी को ठहराती नहीं थीं। रहम खाकर अम्मा मे उसे बिस्तर और आराम दिये।···मगर उस हैवान ने, रात की तन्हाई का फायदा उठा कर मेरे जिस्म से खेलना चाहा। ओह ! वह कयामत की रात ! कितनी मनहूस थी ! कितनी डरावनी ! सिर्फ एक पिस्तौल का डर दिखा कर उसने क्या से क्या कर दिया।" वह

चुप हो गई। मगर लगता था कि अभी अभी उसके साथ दुर्व्यवहार किया गया हो। वह डर से कांप रही थी। सिरिल ने उसे थाम कर पूछा—"तब सन्नो ?"

—"फिर मां ने उस अफसर पर मुकदमा दायर किया, इस उम्मीद से कि इन्साफ होगा। लुटी हुई बच्ची पर···इस सन्नो पर रहम होगा। ···और तब कुछ दिनों के बाद, एक दरोगा साहब इस मुकदमे की छान-बीन करने हमारे घर आने लगे। हमने उनकी खातिरदारी में कोई कसर उठा न रखी। हम खुश हुए, कि अब उस नालायक को किये की सजा मिलेगी।···फिर यह दरोगा साहब भी हमारे घर रोज आधी रात के करीब आने लगे। नींद हराम करते और हमारी कमजोरी का फायदा भी उठाते।"

—"फिर ?"

—"फिर···एक रात उन्होंने अम्मा से कहा कि उन्हें मुझसे कुछ गुफ्तगू करनी है—मगर तन्हाई में। वे बातें जिनसे इस मुकदमे पर रोशनी पड़ेगी। अम्मा के इशारे पर मैं उन्हें भीतर कमरे में ले गई और उस जलील ने भी···। मैं चिल्लाई। तभी अम्मा आ गईं और बिना वक्त दिये उन्होंने उस दरोगा पर, करीब में पड़ा गंडासा उठा कर चला दिया। अम्मा गुस्से से कांप रही थीं—कमीने, तू भी हमारी बेटी से खेलने आया है। हम तवायफ हैं, तो इसके यह माने नहीं कि हर कोई जब चाहे, जैसे चाहे आकर हम से खेले···इज्जत लूटे। लेकिन अब मैं कानून के आगे हाथ नहीं फैलाऊंगी, क्योंकि कानून अन्धा होता है··कमजोरों की इज्जत से खेलना भर जानता है ! नहीं, अब मैं अपनी इज्जत आप बचाऊंगी। —और उस दरोगा का सिर उन्होंने हमेशा हमेशा के लिए कुचल दिया।"

—"इसी कारण जेल में हैं ?"

—"मगर इस हकीकत को लोग बनावटी कहानी कहते हैं।"—वह रो रही थी। सिरिल ने उसे भरोसा दिया···सहारा दिया।

—"तो तुम पायल मत बांधना।"—सिरिल ने घुंघरू की ओर इंगित कर कहा।

इस पर वह हंसी। उसके हंसने में हर्ष नहीं, उपहास की मात्रा अधिक

थी—"घुंघरू···! जिसे तुम घुंघरू कहते हो, दरअसल वह जंजीर है। जंजीर—जिसे शरीफ लोगों ने हमें कमजोर जानकर हमारे पैरों में डाल रखी है। हमारा सुख···हमारी खुशी···यही जंजीर है। हमारे आंसू··· हमारे दर्द—यही जंजीर है। जब-जब यह पैरों से मजबूती से बंधी है, इसी ने हमें रोटी दी है। हमारा ईमान···हमारी रोटी···हमारा खुदा··· अब सब कुछ यही बन बैठी है।"

उसने पास पड़ी पायल को हाथों से उठा कर कहा—"यही खुदा है ···देवी है, जो खाना देती है। और यही शैतान है, नोच-नोच कर···सच मानो, यही जंजीर हमें खा जाती है।"—और घुंघरू फेंककर वह रोने लगी।

सिरिल उसके आंसू पोंछता रहा, खुद भी दर्दीला होकर—दर्द भी उसके दर्द से भीग रहा था।

छः

मां बार-बार शादी का तकाजा करती रहीं। परन्तु सिरिल की कभी हिम्मत न हुई कि वह मां से साफ-साफ मन की बात कह दे। वक्त टलता रहा और वह मां की बात को उसी प्रकार टालता रहा।

एक दिन मां ने चिढ़ कर कहा—"तुझे क्या चिन्ता है। खुद तो बेफिक्र होकर कहता है, मगर घर में जवान बहन पड़ी है कभी उसके विषय में भी सोच। उसकी तो शादी करनी है कि उसे भी···"बीच में ही सिरिल बोल उठा—"करनी तो है ही, मगर कोई लड़का मिले तब ना"

—"लड़के की क्या चिन्ता···अपना रेजी जो है।"—मां ने कहा।

—"सो तो ठीक है मां, मगर वह कैथोलिक है।"

—"तो क्या हुआ ?"

—"होगा क्या, पादरी शादी न खुद करायेंगे और न ही करने की आज्ञा ही देंगे।"—सिरिल चिन्तित हो उठा, साथ ही मां भी। फिर कुछ

विचार कर मां ने कहा —"बेटे, जाकर जरा पूछ तो। उनका मन टटोलने में तो कोई हर्ज नहीं।"

—"मां, मुझे कोई फायदा-वायदा तो नजर आता नहीं। तुम कहती हो तो चला जाता हूं।"—और वह जाने के लिए उठा।

दरवाजे की ओट में इवा खड़ी-खड़ी सब सुन रही थी। उसकी खुशियां लम्बी, बहुत लम्बी हो गईं। खुशियां रबर की तरह होती हैं! उन्हें जितनी खींचो, उतनी ही बढ़ेंगी।···

सिरिल जब पादरी साहब के यहां पहुंचा, उस वक्त वह बाइबिल पढ़ रहे थे। उनकी पुत्री एगनेस हन्ना उनके समीप बैठी थी। उसे देखते ही पादरी साहब न बाइबिल से आंखें हटाकर बैठने का इशारा किया। वहीं निकट पड़ी कुर्सी पर सिरिल बैठ गया। पादरी साहब फिर बाइबिल में खो गये। सिरिल ने देखा, दुनियावी खयालातों सेदूर···सांसारिक सुखों से दूर रहने वाले ईसाई पादरी का घर था। मगर उसे यहां आराम की सभी वस्तुएं नजर आ रही थीं। पलंग, मुलायम गद्दे, फ्रिज, रेडियो, पियानो, पंखा, हीटर सभी कुछ एक ही झलक में देख लिया उसने।··· मन ही मन सोचने लगा, यदि धर्म में आराम देने की इतनी क्षमता है, तो इस युग में सभी को धर्म के नाम पर पादरी बन जाना चाहिए।

बीच-बीच में हन्ना सिरिल को निहार लिया करती। सिरिल ने देखा, कीमती पोशाक में सजी यह लड़की किसी राजकुमारी से कम नहीं प्रतीत हो रही थी। उसे खयाल आया, यह तो उस इन्सान की पुत्री है, जिसने दुनियादारी से नाता तोड़कर सभी सुखों को परे कर दिया है।···तभी पादरी साहब ने कहा···"हन्ना बेटी इस विषय पर फिर कभी चर्चा करेंगे।" और सिरिल की ओर मुड़ कर बोले—"तब भई, किधर आये?"

कुछ अपने को सम्भालते हुए सिरिल ने कहा—"शायद मैंने खलल डाल दिया।"

पादरी साहब ने मुसकरा कर कहा—"अरे नहीं भई, मैं तो हन्ना को समझा रहा था कि इस संसार में सभी परमेश्वर के रचे हुए हैं। सभी एक से हैं—न कोई बड़ा, न छोटा। उनमें असमानता खोजना मूर्खता है।"

—"सही फरमाते हैं।"—सिरिल ने कहा।

तभी हन्ना की ओर देखकर पादरी साहब बोले—"बेटी, चाय का प्रबन्ध करो न···आर्टिस्ट साहब को चाय भी नहीं दोगी ?"

—"अभी लाई डैडी।"—और एक अदा से वह उठी। उसके जाने के बाद पादरी साहब की ओर कुछ झुक कर सिरिल ने कहा—"पादरी साहब, बात यह है कि···।" वह बीच में ही रुक गया।

—"कहो न···।"

—"मैं इवा की शादी करना चाहता हूं।"—सिरिल ने साहस किया।

पादरी साहब हंसे—"बड़े शौक से करो। अब तो वह जवान भी हो गई है।"

—"जी, इसलिए तो आशीर्वाद चाहिए।"

—"कैसा आशीर्वाद ? मैं खुद शादी दे दूंगा।

सिरिल ने बात साफ हो जाने के विचार से कहा—"बात यह है कि मां चाहती है कि रेजी के साथ···"

—"क्या कहा ? रेजी के साथ ? तुम्हारा दिमाग तो ठीक है न ! ऐसी बहकी-बहकी बातों के क्या मानी ? तुम लोग प्रोटेस्टेंट हो और रेजी है कैथोलिक। भला यह सम्बन्ध कैसे होगा ?"

—"मगर···"

—"अगर मगर कुछ नहीं। कैथोलिक लोग मूर्तिपूजक हैं और हमारे अहदनामे के अनुसार मूर्ति पूजना महापाप है। तुम सब कुछ जानकर अपनी बहन को एक पापी के हाथों में देना चाहते हो ?"

—"पादरी साहब, वे भी तो ईसाई हैं।"

—"मैं नहीं मानता। कैथोलिक ईसाई होकर भी ईसाई नहीं होते। मैं तुम्हें ऐसा करने की इजाजत नहीं दूंगा, समझे !"

सिरिल को हाथों से बाजी जाती लगी। फिर भी उसने हिम्मत की—"अभी तो आप कह रहे थे, कि सभी परमेश्वर की संतान हैं। किसी प्रकार की असमानता खोजना मूर्खता है।"

—"इससे क्या होता है··· वे राह भूले हैं।"

—"तो हम उन्हें राह पर ले आयेंगे ?"—सिरिल ने कहा।

तभी हन्ना चाय लेकर आ गई। मेज पर रखकर पूछ बैठी—"क्या बातें हो रही थीं ?" पादरी साहब ने व्यंग्य से कहा—"सिरिल इवा की शादी करना चाहता है, मगर रेजी के साथ।"

विचित्र प्रकार से मुह बनाकर वह बोली—"तौबा···तौबा···यह पाप ! इसे तो जीसस कभी भी माफ नहीं करेंगे।"—और वह चाय बनाने लगी।

पादरी साहब ने समझाया—"देखो सिरिल, तुम खुद समझदार हो ···ऐसा कोई काम करने से क्या फायदा जिससे बदनामी हो। लड़कों की कमी तो है नहीं, और फिर खोजने से क्या नहीं मिलता। कुछ ठहरो, कुछ खोजो···अपनी ही बिरादरी में, एक-से-एक बढ़कर मिल जायेंगे। अच्छा छोड़ो इन बातों को, चलो चाय तो पीओ।"

हन्ना ने चाय की प्याली सिरिल की ओर बढ़ा दी। चाय लेकर सभी के साथ वह भी धीरे-धीरे पीने लगा। पादरी साहब ने पूछा—"क्यों सिरिल, कैसी बनी है ?"

चाय की चुस्की लेकर सिरिल बोला—"बहुत खूब !"

पादरी साहब एक हलकी मुस्कान हन्ना पर फेंक कर बोले—"मैं कहता था न कि चाय बनाने में तुम्हारा जवाब नहीं।"

हन्ना लजाकर बोली—"नो डैडी, नो, आप तो बस यूं ही बनाते हैं।"—फिर प्याली रख कर वह उठी और पादरी साहब पर झुककर बोली —"डैडी, जरा उसके बारे में कहिये न।"

—"इसमें भला शर्माने की क्या बात है? सिरिल तो अपना ही आदमी है, खुद ही कह दो न।"

—"ओह नो, नहीं डैडी···।"

तभी सिरिल ने कहा—"कहिए न, क्या बात है ? मेरे योग्य कोई सेवा हो, तो इन्कार थोड़े ही करूंगा।"

पादरी साहब हंसे—"देखो बेटी, में कहता न था कि सिरिल ना थोड़े करेगा।"—फिर सिरिल की ओर मुड़कर बोले—"भई हन्ना तो बड़ी शर्मीली है।···बात यह है कि हमारी बदली हो गई है।"

—"कहां ?"

—"बस इसी का निर्णय होना बाकी है। दो-चार जगहों की बातें हैं, कहीं तो होगी ही।···हां, तो हन्ना चाहती है कि तुम उसकी एक ऑयल-पेंटिंग बना देते···भई, आखिर तुम लोगों की याद दिलाने के लिए तो कुछ निशानी होनी ही चाहिए।"

सिरिल चुप रह गया। पादरी साहब ने स्थिति समझ कर पुनः शह दी—"तुम भी कमाल करते हो, अरे भई, जो खर्च होगा, वह हमें देने से इन्कार थोड़े है।"

इस वाक्य से सिरिल घुल गया। उसे मात करने के लिए यह चाल पर्याप्त थी। वह हंस कर बोला—"नहीं···नहीं, पादरी साहब, यह बात नहीं है। भला रुपये-पैसों की क्या बात। मैं बना दूंगा।"

हन्ना प्रसन्न होकर बोली—"दूर जाकर भी आपको भूलेंगे नहीं हम।"—और उसने एक आकर्षक मुसकान सिरिल पर फेंकी। सिरिल को लगा, वह तार-तार होकर रह गया।

उसने चित्र बनाना स्वीकार कर लिया। पादरी साहब को अपनी जीत पर नाज था। उनकी आंखों में विजय के चिह्न स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित हो उठे। हन्ना भी जाने क्यों और-और अपने में डूबी जा रही थी। सिरिल को लगा, वही आज के खेल में अकेला हारने वाला खिलाड़ी है—उसका कोई साथी नहीं, कोई संगी नही। थका-हारा वह लौट चला घर की ओर। बाहर फाटक तक हन्ना उसे पहुंचाने आई—"देखिये, कल से आना मत भूलियेगा, वरना दूसरी जगह जाकर हम भी भूल जायेंगे।" और वह सब कुछ भूल कर चलने लगा—आहिस्ता-आहिस्ता !

घर आकर चुपचाप स्टूडियो में बैठ गया। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे ! वह तो पादरी साहब का जवाब पहले ही जानता था। केवल मां का दिल रखने के लिए चला गया था।

थोड़ी देर बाद मां नीचे आईं। इवा पीछे दरवाजे की ओट में खड़ी चुप-चुप सुनने का प्रयास करने लगी।

—"क्या हुआ बेटे ?"

सिरिल ने भारी पलकों से मां को देखा।···

—"क्या हुआ रे? बोलता क्यों नहीं ?"

—"होता क्या मां, वही हुआ जिसका मुझे डर था। मगर सब ठीक हो जायेगा।"

—"ठीक तो हो जायेगा···मगर रेजी के बारे में ?"

दरवाजे की ओट में इवा का दिल जोर से धड़क गया।

सिरिल ने एक गहरी सांस लेकर कहा—"मां होना क्या है। वह तो कैथोलिक है न···और हमारे प्रोटेस्टेंट पादरी उन्हें अच्छी नजरों से नहीं देखते, उन्होंने इन्कार कर दिया।"

मां का मन छोटा हो गया। बोलीं—"हां हां, तू धर्म को लेकर चाट!"

सिरिल ने कहा—"मगर मां, बिरादरी से अलग कैसे रहा जा सकता है? पादरी की बातों से पृथक होना भी ठीक नहीं। अपनी जमात···"

—"और दुनिया भर में जो कोर्ट-मैरेज···"

सिरिल चौंक गया—"कोर्ट मैरेज? नहीं-नहीं, यह मुमकिन नहीं। ···कोर्ट मैरेज तो पलायन है। पादरी और जाति से भागना है।···भागकर कोई जी नहीं सकता।"

—"तब क्या होगा?'

—"होगा क्या, इन्तजार करना होगा—वर्ष, दो वर्ष, चार वर्ष जब तक समाज के ठेकेदार खुद ही हार कर शादी की इजाजत न दे दें।···मगर मैं कोर्ट मैरेज नहीं होने दूंगा—तब लोगों की उंगलियां उठेंगी, कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट का हवाला दिया जायेगा। नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।" —उसने अपने घुटनों पर सिर टेक दिया।

मां टूटे-टूटे अरमान, स्वप्न लिये जाने लगीं। इवा की पलकें भीग गई। उसने आज अनुभव किया, खुशियां रबर हैं, जितना खींचो बढ़ेंगी ···बढ़ कर लम्बी हो जायेंगी···बहुत लम्बी। मगर कभी-कभी ज्यादा खींचने पर टूट भी जाती हैं और फिर खींचने पर खिचती ही नहीं···।

सात

चार-पांच दिनों के परिश्रम में ही सिरिल ने हन्ना के चित्र को लगभग पूरा कर लिया। उसका नित्य का काम था—सुबह-सुबह नाश्ते आदि से छुट्टी पाकर पादरी साहब के यहां जा जमना। हन्ना सामने की कुर्सी पर बैठ जाती और वह अपने में खो जाता। उसकी उंगलियां कैन्वस पर ब्रश चलाती रहतीं।

चित्र में बस "फिनिशिंग टच" दिया जा रहा था। शाम खोई-खोई रात में बदलने लगी। मगर सिरिल को समय का अन्दाज़ा ही नहीं रहा। उसे तो केवल एक धुन थी—आज चित्र पूरा करना है, किसी भी तरह। उसे पता तक नहीं चला, कि कब आकर नौकर बत्ती जला गया। वह काम में तल्लीन था। पादरी साहब घर में थे नहीं—अपनी बदली के सिलसिले में बाहर गये हुए थे। बाहर काफी तेज हवा थी, बारिश भी।

तभी हन्ना कुर्सी से उठी। सिरिल के कन्धे पर हाथ रखकर बोली —"सुनो न, अब बस भी करो। फिर कभी पूरा कर लेना।"

काम में व्यस्त सिरिल की तन्द्रा टूटी—"अं!"

—"अं: क्या, हर समय काम-काम—मन थकता नहीं तुम्हारा?"

—"नहीं तो।"—ब्रश रखते हुए सिरिल ने कहा।

एक अदा से घूमकर हन्ना ने पूछा—"अच्छा बताओ, मैं कैसी लगती हूं?" उसका आंचल आप से आप सरक गया। उसने उसे संभालने की कोई कोशिश भी नहीं की।

सिरिल ने देखा, कीमती आभूषणों में सजी हन्ना वास्तव में यौवन के बोझ से दबी जा रही थी। उसने सहज भाव से कहा—"भई, मैं तो बस इतना भर जानता हूं कि खूबसूरत चीज खूबसूरत ही लगती है।" और सिरिल की दृष्टि हन्ना के सरके हुए आंचल की ओर चली गई।

"धत्!" और उसने अजीब अन्दाज से आंचल को संवार लिया।

जब सिरिल चलने को हुआ तो बारिश जोरों पर थी। उसने पूछा —"कोई छाता है?"

—"क्यों?"—हन्ना का प्रश्न था।

—"घर जाऊंगा और क्यों।"

हन्ना, सिरिल के और करीब आ गई—"नहीं, आज तुम मत जाओ। डैडी भी घर पर नहीं हैं। फिर इतनी भयानक रात···मुझसे कैसे रहा जायेगा···मुझे डर लगता है।"—और सचमुच उसके चेहरे से भय टपकने लगा।

—"डरने की कौन-सी बात है? नौकर-चाकर तो हैं ही।"

—"नहीं नहीं, उनका भी कोई भरोसा करता है? तुम जाओगे तो मैं भी साथ चलूंगी।"—विवश होकर सिरिल को कहना पड़ा—"अच्छा नहीं जाऊंगा।"

भोजन आदि से निबट कर हन्ना ने सिरिल को पादरी साहब के कमरे में पहुंचा दिया और स्वयं अपनी कोठरी में चली गई, जो बगल में ही थी।···सिरिल ने गद्दे पर हाथ रखा। वाह! कितना मुलायम था। पादरी के लिए तो इस प्रकार का गद्दा नहीं होना चाहिए, शायद! मगर फिर उसने अपनी गलती सही की, हां, इसी तरह का होना चाहिए तभी तो वह आराम कर सकेंगे। और धर्म का प्रचार सफलता पूर्वक कर सकेंगे।···

गहरी रात और भी गहरी हो गई।

बाहर बारिश हो रही थी, बीच-बीच में बिजली भी कड़क उठती थी।···सिरिल थोड़ी ही देर में सो गया।···ऐसी आरामदेह जगह पर नींद भी जल्दी आना जानती है। उसे भी आराम करने में कुछ ज्यादा ही मजा आता है। भला गुदढ़ी चिथड़ों में नींद आये भी तो किसलिए?

रात काफी गुजरने पर सिरिल के बालों ने किन्हीं कोमल उंगलियों का स्पर्श अनुभव किया। उसकी नींद उचट गई। उसने सहलाने वाले हाथ को थाम लिया। उन हाथों में चूड़ियां थीं और चूड़ियों में खनक। अंधेरा घुप्प! ···हाथ को हाथ नहीं सूझता, परन्तु सिरिल ने उन कलाइयों को पहचान लिया। सिरिल ने उस नाजुक हाथ को छोड़ दिया। मगर अब उसका ही हाथ उन हाथों में था।

हन्ना सिरिल का हाथ थामे रही। सिरिल ने छुड़ाना चाहा। परन्तु पकड़ने वाले की पकड़ और कड़ी हो गई। मजबूती से खिंचता हुआ

उसका हाथ हर पल आगे को खिचा जा रहा था।

सिरिल को अपने माथे पर गरम गरम सांसें महसूस हुईं और आखिर उसका संयम बरफ की तरह पिघल गया। वह पराजित हो चुका था और रात बेतहाशा भागी जा रही थी, क्योंकि हमेशा की तरह, एक मर्द ने एक औरत के आगे घुटने टेक दिये थे··

आठ

—"अब ?"—एक नारी स्वर कांप गया।

—"अब क्या···गाड़ी छूटने में केवल दस मिनट हैं।"—कलाई घड़ी की ओर देखते हुए रेजी ने कहा।

सूटकेस सरकाती हुई इवा बोली—"मगर मन डरता है···रेजी !"

रेजी फीकी हंसी हंसकर बोला—"तुम डरती हो, पर मैं नहीं, क्योंकि डरना स्त्रियों का स्वभाव है। इवा, मैं तो कब से इस अवसर की तलाश में था, और आज वह मिल ही गया।···ये पादरी तो शादी करने ही नहीं देते और फिर तुम्हारे भैया के रहते तुम्हारा आ सकना भी सम्भव कहां होता। आज जब मौका पाकर हम सदा के लिए एक होने जा रहे हैं, तो तुम डर रही हो। सुनो इवा, भय शाप है।"

—"रेजी, डरना तो बुरा नहीं। सभी को डरना चाहिए। मेरी मानो, तो भय ही वह शाप है, जिस पर विश्वास कर सतर्कता का वरदान प्राप्त किया जाता है।···और स्त्रियां इतनी सतर्क क्यों कही जातीं हैं, केवल इसी कारण कि वे डरती हैं।"

—"परन्तु इवा, सिर्फ तुम्हें ही भय क्यों ? मैं भी तो घर छोड़कर भाग रहा हूं।"—गम्भीर होते हुए रेजी ने कहा।

उसकी आंखों में डूबती हुई इवा बोली—"और मैं···मात्र तुम्हारे लिए···अपने प्रेम को जीवित रखने के लिए···हंसता मुसकराता परिवार त्याग कर आई हूं।···काश ! मैं प्रोटेस्टेंट नहीं होती और तुम कैथोलिक

···या फिर इन्सान को इन्सान से पृथक् करने वाले ये पादरी ही नहीं होते ! एक ही ईसा के अंग, परन्तु सामाजिक विभक्तियों के कारण मेल सम्भव नहीं···बस, पलायन···केवल पलायन ! क्या विवश मानवता की नियति यही है रेजी ?"

—"इवा, हम लोग अपनी प्यारी-सी जमीन, अपना छोटा सा घर, अपना प्रिय शहर त्याग कर जा रहे हैं—मात्र इसी कारण कि सदा-सर्वदा साथ-साथ रहें। परन्तु कभी-कभी मैं भी डर जाता हूं···तुम अत्यधिक सुन्दर हो, बहुत आकर्षक ! कोई भी तुम्हें प्यार करने में अपना सौभाग्य मानेगा। कहीं तुम बड़े शहर में, बड़े-बड़े लोगों के मध्य खो गईं, तो मैं भीड़ में हाथ छूटे बालक की तरह असहाय हो जाऊंगा।"—और रेजी के चेहरे पर दर्द की रेखाएं उभर आईं। आंसू छिपाने के इरादे से उसने खिड़की के बाहर सिर कर लिया।

बर्थ पर चादर बिछाती हुई इवा के हाथ एकाएक थम-से गये। उसने तो यह सोचा भी न था कि पुरुष भी कभी इतना पिघल कर गल सकता है। उसके सामने तो पुरुष का रूप कुछ और ही था। परन्तु आज उसने प्रत्यक्ष रूप से जाना था कि चाहे मर्द हो या औरत—सबके अन्दर जो आत्मा है, वह मोम है, आंच की कल्पना मात्र से गलना उसके लिए जैसे एकदम स्वाभाविक है। वह चादर छोढ़कर बढ़ आई। उसने अपने शब्दों में अधिक से अधिक विश्वास उत्पन्न कर कहा—"रेजी, क्या तुम्हें मेरा भरोसा नहीं···मुझ पर न सही, परन्तु मेरे भीतर छिपी नारी का तो विश्वास करना ही चाहिए। मैं तुम्हें कैसे बेसहारा कर सकती हूं, जबकि नारी का दूसरा नाम ही सहारा है।···जानते हो, औरत दीवार हुआ करती है। पुरुष-जीवन की छत का पूरा-पूरा बोझ वही उठाती है।"

रेजी ने उसका हाथ अपने हाथों में ले लिया। दोनों एक दूसरे को प्रेमभरी दृष्टि से तकते रहे। रेजी शान्त था। तब बहुत ही गीले स्वर से वह बोली—"रेजी, यदि मैं तुम्हें त्याग भी दूं, तो तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ेगा। तुम तो पुरुष हो। परन्तु स्मरण रखना, उस अपरिचित स्थान में, मुझे केवल तुम्हारा ही आसरा रहेगा।"—और उसकी पलकें भीग गईं।

रेजी ने उसके मुंह पर हाथ रख दिया—"शुभ अवसर पर ऐसी बातें नहीं करते, पगली ! आज से तो हमारा नया जीवन प्रारम्भ हो रहा है।"—इवा और भी गल गई।

रेजी ने मुसकुराने का प्रयत्न किया—"यह सच है इवा, तुम्हारे बिना मैं जी भी तो नहीं सकता ! तुम्हीं तो वह दीवार हो, जिस पर मेरी जिन्दगी की छत टिकी है। फिर तुम्हें गिरते हुए मैं देखूंगा भी कैसे···"

"कू···ऊ···ऊ" की लम्बी सीटी ने दोनों के विचारों को एक नई दिशा में प्रवाहित होने पर विवश कर दिया। दोनों शान्त भाव से बाहर देखने लगे। गाड़ी एक झटके के साथ चल पड़ी। दोनों ने भीगी-भीगी पलकों से अन्तिम बार उस धरती के दर्शन किये—जहां उनके पवित्र प्रेम की जड़ थी। उनका शहर—उनके लिए तीर्थ स्थान ! परन्तु समाज और जाति के नाम पर वे वहीं से हमेशा-हमेशा के लिये···गाड़ी जाती रही, और दो-दो—कुल चार प्यासी आंखें तकती रहीं···तकती रहीं अपने छूटते हुए शहर को···

नौ

सिरिल जब उठा, आठ बज चुके थे। हन्ना नहा-धोकर तैयार थी। शरीफ लड़की···दूध की धोई ! ···दिन की रोशनी में लज्जा की नकाब पुनः चढ़ गयी। शराफत का आवरण—क्योंकि यह भी एक गुण है, जिस के आधार पर शरीफ लड़कियां, शरीफ कही और समझी जाती हैं।

सिरिल को चुप देखकर उसने पूछा—"नाराज हो ?"

···चुप्पी !

—"बोलो न···।"

—"नहीं तो···मगर···"

—"अगर मगर क्या, चिन्ता करने की कोई जरूरत नहीं। अन्धेरे

में हुआ जुर्म···जुर्म नहीं ठहरता।"

और वह शराफत से मुसकुराई। सिरिल शान्त रहा। हन्ना ने उसके बालों में उंगलियां फेरकर कहा—"अच्छा, मैं चाय लेकर आती हूं, तब तक तुम बगल में जाकर मुंह हाथ धो लो।"—और वह चली गई। वही सादगी, वही सरलता, वही भोलापन और वही शराफत जो शरीफ लड़कियों में होती है, जो पादरी की बेटियों में होनी चाहिए।

सिरिल सोचने लगा—यह शरीफ लड़की है। आला खान्दान से है। ऊंचे दर्जे में पढ़ती है। पादरी की पाक पवित्र पुत्री है···तो क्या नकाब में छिपी प्रत्येक सूरत का सुन्दर होना कोई आवश्यक नहीं—वही सत्य यहां भी है। फिर विचार आया···अन्धकार में हुआ जुर्म, जुर्म नहीं ठहरता।···हुं···! ···तो फिर इनमें और आम लोगों में फर्क क्या हुआ? एक अन्तर यही है--एक मां को जेल से रिहा करने के कारण गिरती है, भाई-बहनों की रोटी के लिए गिरती है और एक महज अपने शौक के लिए।···एक दिन के उजाले में पाप करती है, खुलकर जुर्म करती है—इसी कारण उस का जुर्म-जुर्म ठहरता है।···परन्तु "रात के अन्धकार" में हुआ पाप, पाप नहीं—पुण्य होता है।

इतने में हन्ना चाय लेकर आ गई। रोज की तरह दिन साफ था। रोज की तरह वह पाक और पवित्र थी। शरीफ लोग दिन में शरीफ रहते हैं···दिन के उजाले में और भी चमकते हैं, जैसे सफेद साड़ी में हन्ना लग रही थी।

उसने चाय बनाकर सिरिल को दी। खुद भी पीने लगी। दोनों चुपचाप चाय की चुस्कियों में डूबे रहे। चाय खत्म भी हो गई, मगर कोई बोला नहीं। हन्ना ने बात चलाई—"एक कप और दूं?"

—"नहीं···मैं ज्यादा चाय पीता भी नहीं।"

फिर शान्ति!

हन्ना हैरान नजरों से उसे तक रही थी। उसे सिरिल का इस प्रकार चुपचाप रहना खल रहा था। वह बोल उठी—"भला ऐसी कौन-सी बात हो गई कि आप बोलना भी···!" बीच में ही सिरिल ने कहा--"देखिए, तस्वीर पूरी हो गई है।"

हन्ना ने भी अजीब अन्दाज से पूछा—"कितने रुपये आपको दिये जायें ?"

"रुपयों की आवश्यकता नहीं है।" और वह चलने को खड़ा हो गया।

—"एक मिनट···" हन्ना भीतर चली गई। सिरिल खड़ा-खड़ा उसकी प्रतीक्षा करने लगा। जब वह लौटी, उसके हाथ में कागज का एक पुर्जा था। वह पास आकर बोली—"इसे रख लो न···!" और वह तेजी से घर के भीतर भाग घई। सिरिल ठगा-ठगा द्वार से बाहर आ गया।

फुटपाथ पर चलते चलते वह ठहर गया। उसने जेब से कागज का वह पुर्जा निकाला। पढ़ने लगा—

"जाने, रात में मन कहां उड़ गया था।

मन दुश्मन, बड़ी तकलीफ दी। क्यों;

क्षमा तो कर दोगे न···?"

सिरिल ने उसे फाड़कर फेंक दिया। टुकड़ा—और-और टुकड़ों में बंटकर उड़ने लगा। अब उसे पूर्ण विश्वास हो गया था, कि हन्ना वास्तव में शरीफ है···क्योंकि गन्दी औरत जो कुछ करती है, उसके लिये क्षमा नहीं मांगती। यही तो शरीफ और पतित में अन्तर है।···शरीफ लोग शिष्टता जानते हैं।

उसके कदम और तेज हो गये।

दस

घर में कुहराम मचा था। मां की आंखें रोते-रोते सूज गई थीं। सिरिल को देखते ही वह फूट पड़ीं। सिरिल की समझ में कुछ नहीं आया।

—"क्या बात है मां ?"—उसने हमदर्दी से पूछा।

—"बेटे ···" वह पुनः रोने लगीं। सिरिल पागलों की तरह चिल्लाया —"कुछ बोलोगी भी या···"

मां ने भीगी पलकें उठाकर कहा—"मेरी बेटी···"

—"क्या हुआ इवा को ?"

—"वह घर में नहीं है।"

—"घर में नहीं है तो कहां है ?"

"···"

—"कहां गई वह ?"

उसके रुख से मां भी कुछ डर-सी गईं। बोली—"लोग कहते हैं कि वह भाग···"

—"लोग तो बकते हैं।" सिरिल जोर से चिल्लाया। एक पल कुछ विचार कर, वह हवा की तेजी अख्तियार कर घर से बाहर आ गया। मां और भी सिसकने लगीं।

दिन भर की खाक छानकर सिरिल शाम को घर लौटा खाली-खाली। परन्तु उसे इतना तो ज्ञात हो गया था कि इवा रेजी के साथ गई है, क्योंकि वह भी रात से घर से लापता था। वह न दुःखी हुआ और न उसे प्रसन्नता ही हुई। उसने सोचा, बुरा क्या हुआ जो इवा चली गई ·· जिसके साथ उसे जाना था, उसी के साथ तो गई। हां, मलाल है तो इस बात का कि जिस प्रकार उसे विदा होना था, उस प्रकार बेचारी न हो सकी।

मां ऊपर, बिस्तर पर सो रही थीं। उनकी बगल में सन्नो की नौरी बैठी थी। सिरिल ने आकर मां को स्पर्श किया, कुछ हल्का-हल्का ज्वर चढ़ आया था। उसने परे हट कर इशारे से नौकरानी को बुलाया—"कब से हो ?"

—"काफी देर हो गई।"

—"मां को कुछ दिया ?"

—"जी मालिक, सन्नो बीबी ने साबूदाना बना कर भिजवा दिया था। मैंने वही खिला दिया।"—नौरी ने कहा।

सिरिल एक क्षण के लिये मौन हो गया। फिर उसने नौरी से पूछा

—"सन्नो नहीं आई ?"

—"जी नहीं।"

यह उत्तर सुनकर सिरिल का मन जाने कैसा तो हो गया। वह कड़े स्वर में पूछ बैठा—"क्यों नहीं आई···?"

कांपती आवाज़ में नौरी ने कहा—"जी···ई···ई···जी, मैं नहीं जानती, मालिक !"

—"तुम नहीं जानती···मैं नहीं जानता···तो आखिर जानेगा कौन ?" और वह उसी प्रकार क्रोध में कांपता हुआ बाहर निकल आया।

सन्नो के दरवाजे पर उसने आवाज दी—"सन्नो···सन्नो !" उस की आवाज में कर्कशता थी।

—"कौन है ?"—भीतर से प्रश्न आया।

—"और कौन, तेरा खुदा !"

—"आई, अभी आई।"—इस उत्तर के साथ ही सन्नो हाजिर हो गई। सिरिल गुस्से से कांप रहा था। उसकी यह स्थिति देखकर सन्नो घबरा गई। "बात क्या है ? बहुत गुस्से में दिख रहे हो ?"—उसने धीरे से पूछा।

—"पूछते शर्म नहीं आती ?"

—"कुछ कहोगे भी या···अच्छा, भीतर तो आओ।

—"कोई ज़रूरत नहीं।"

—"बहुत गुस्से में हो···हवा नहीं मिली ?"

—"तुम्हारी बला से। मां की तबीयत खराब है और तुम उन्हें देखने को भी नहीं गईं। नौरी को भेजकर फर्ज अदा कर दिया।"

—सन्नो खामोश ?

—"बोलती क्यों नहीं, गूंगी हो गई हो क्या ?"—व्यंग्य में उसने कहा।

बहुत धीमी आवाज में वह बोली—"नहीं, यह सब ऐसा नहीं है, जैसा तुम समझ रहे हो !"

—"तो कैसा है ?"

सन्नो उसे भीतर ले गई—"देखो सिरिल, मैं बहुत मजबूर हूं···।"

सिरिल तो जल ही रहा था, बोला—"घर में मां को बुखार है। इवा चली गई। और तुम मजबूर हो···कौन-सी नई बात तुमने कही, वेश्याएं तो विवश होती ही हैं।"

सन्नो का अन्तर टूट-टूट कर बिखर गया। सिरिल से अपने लिये ऐसे शब्दों की उसे आशा नहीं थी। वह बोली—"जो जी में आये, कह लो। मैं सचमुच गन्दी हूं। सभी तो ताना मारते हैं···तुम भी कह लो। सभी नापाक कहते हैं। फिर भी, और-और नापाक करने चले आते हैं। सिरिल, मैं इसी लायक हूं।" वह फूट पड़ी।

पुरुष सब सह लेता है···सब झेल लेता है, परन्तु नारी के आंसुओं के समक्ष उसका बांध पल भर भी नहीं टिकता। सिरिल जैसे पानी हो गया —"मत रो सन्नो···मत रो। मैं सच कहता हूं—मैं पागल हो जाऊंगा···"

—"ऐसा नहीं कहते···।"—सन्नो ने रोते-रोते उसके मुंह पर हाथ रख दिया। वह बोली—"सिरिल, सचमुच मैं मजबूर हूं।"

—"मजबूर हो, लेकिन क्यों?"

—"कुछ नहीं···बस यूं ही।"

—"यूं ही का कोई अर्थ नहीं। तुम्हें मेरी सौगन्ध, सन्नो! तुम्हें तुम्हारे खुदा का वास्ता है।"

सन्नो अपने आंसू पोंछकर बोली—"तुम्हारे ही पादरी साहब···" वह रुक गई।

—"क्या कहते हैं, पादरी साहब?"

सन्नो ने सिरिल के वक्ष में मुंह छिपाकर कहा—"जिस दिन तुम इवा के लिये दवा लेने गये थे···उस दिन वह आये थे। इवा से कह रहे थे, कि तुम्हारा भाई एक गन्दी औरत को अपने घर में लाता है। ऐसी औरतों का घर आना, घर के लिए ही नहीं पूरी ईसाई जाति के लिए बुरा है। ईसाई-समाज की बदनामी हो रही है। और घरों में भी ईसाई लड़कियां हैं।···उनकी इज्जत भी मेरी वजह से खतरे में हैं।···मैं···इसी वजह से तुम्हारे यहां जा नहीं सकती थी, सिरिल।"—सिसकने लगी सन्नो।

सिरिल की पेशानी पर कई आड़ी-तिरछी लकीरें उगीं और मुरझा

गईं। उसका मुंह क्रोध से लाल हो गया—"हुं :।···पादरी साहब को किसी के पारिवारिक मामले में दखल देने का क्या हक है ! कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट का बखेड़ा खड़ा कर उन्होंने मेरी बहन को मुझसे जुदा कर दिया। मिलाने के बजाय जुदा करने का पेशा अपना रखा है इन लोगों ने धर्म के नाम पर ···"

—"सिरिल···ऐसा न कहो।"

—"क्यों न कहूं ? खूब कहूंगा ! पादरी साहब तुम्हें मना करने वाले कौन होते हैं ? मैं किसी को घर में लाऊं···किसी को बुलाऊं, उन का क्या जाता है आराम से रोटी पा जाते हैं तो···"

—"नहीं सिरिल, ऐसा कहने से पाप लगता है। ऐसा मत कहो।" झकझोरते हुए सन्नो ने कहा।

—"कहूंगा। जरूर कहूंगा। शोर मचा कर कहूंगा। मैं भी धर्म की परिभाषा जानता हूं। सुनना चाहो, तो सुन लो—"रिलीजन इज़ वन्स पर्सनल रिलेशनशिप विद् गॉड। खुदा से जाती रिश्तेदारी का नाम है, महजब ! समझीं ?"

सन्नो घबरा उठी—"सिरिल, मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आ रहा।"

—"और सन्नो, पादरी जो कहता है वह भी तो हमारी समझ में नहीं आता है, इसी का तो वह नाजायज फायदा उठाता है। ऐसे धर्म को···ऐसे पादरी को सिर झुकाना मैं अपनी बेइज्जती समझता हूं,···जो इन्सान को इन्सान से अलग करता है। व्हाट आई वान्ट इज़, नाट टु पॉजैस रिलीजन, बट टु हैव ए रिलीजन दैट शैल पॉजैस मी। मैं ऐसा धर्म नहीं चाहता सन्नो जिसे मैं धारण करूं, बल्कि ऐसा धर्म चाहता हूं, जो मुझे धारण करे !"

—"सिरिल···सिरिल, तुम्हें क्या हो गया है ?"

"कुछ भी तो नहीं। हुआ तो पादरी को था, जो उसने तुम्हारे आने पर प्रतिबन्ध लगाया। इवा की शादी की मंजूरी नहीं दी।···बड़ा पाक और पवित्र बनता है। मैं भी जानता हूं, उसकी बेटी कितनी सीता है··· कितनी मरियम है···" और वह गुस्से से कांपने लगा।

—"सिरिल, तुम्हें मेरा वास्ता है, इतना मत बिगड़ो···मैं तुम्हारे घर चलूंगी। जरूर चलूंगी।"—और वह दौड़ कर स्टूडियो की तरफ भाग

गयीं।

मिरिल धीरे-धीरे लौट पड़ा।···

ग्यारह

इधर कुछ दिनों से सिरिल का कलाकार गर गया। उसके अन्तर की जितनी भी कोमलता थी, धर्म और समाज के हाथों बिक गई। अब वह बर्बर था—सत्य से टकराया हुआ कोई दर्पण···चूर-चूर होकर भी चुभने को क्षमता रखने वाला कोई शीशा !

उस दिन काफी लम्बा चक्कर काटकर आ रहा था। उसकी नजरें श्रीकान्त के घर पर गईं। वहां अच्छी खासी भीड़ जमा थी। वह उधर ही बढ़ गया द्वार पर ही उसके कानों में भनक पड़ी—"बेटे ! तसल्ली बड़ी चीज है। खुदा की पाक इनायत।"—किसी मौलना ने फिर बात बढ़ाई —"और बेटा, यह आना जाना तो लगा ही रहता है। यही तो जमाने का दस्तूर है। सब परवरदिगार का करम है।"

मिरिल वहीं ठिठक गया। तभी रामनामी चादर ओढ़े पंडितजी ने कहा--"वत्स ! पत्नी की मृत्यु का शोक निश्चित है। नाशवान शरीर का नष्ट होना तो अनिवार्य है। परन्तु पुत्र, केवल शरीर का ही तो नाश हुआ है, आत्मा ने तो पूर्णतः निवृति पाई है। मृत्यु तो मन का भरम मात्र है।"

सिरिल और श्रीकान्त में गहरी नहीं, तो उस कोटि की मित्रता अवश्य है, जिसमें सुख-दुःख में कम से कम साथ निभाने की शर्त रहती है। उसे पता चला कि प्रसव-पीड़ा में तड़पती हुई श्रीकान्त की पत्नी चल बसी। उसे याद आया की अभी पिछले वर्ष ही उसके हाथों में मेंहदी रची थी। पिछले वर्ष ही सुहाग की चूड़िया खनकी थीं। पिछले वर्ष ही डोली सजी थी। और आज, वर्ष भर बाद पुनः डोली सजने वाली थी। जिन हाथों से श्रीकान्त एक अपरिचिता को अपने घर लाया था, आज उन्हीं हाथों से वह एक परिचिता को विदा करने वाला था।

उसने सामने खड़ी भीड़ को देखा। उससे रहा नहीं गया, तो बड़े अजीब ढंग से बोला—"क्या मजमा लगा रखा है ? रो-गा कर घर सिर पर उठा लिया है ! जितना दुःखी श्रीकान्त नहीं दीखता, उससे कहीं अधिक आप सब। बेकार का अभिनय ! क्या फायदा है इस नाटक से ? शव उठाने का प्रबन्ध करें तो बात भी है।"

खिसकने वाले धीरे-धीरे सरकने लगे। सिरिल जैसे अपनी विजय पर मुसकुराया। श्रीकान्त के कन्धे पर हाथ रखकर बोला—"तुम तो एकदम पानी हो, पानी··· ! मेरी तरह पत्थर बनो। देखो, दुखः सहते-सहते पत्थर बन गया हूं। ठोस जीवन के सामने हिम्मत हार देना बुजदिली है, श्रीकान्त ! सच मानो यह अक्षम्य पलायन है।"

श्रीकान्त में जो वेदना के पानी का प्रभाव था, उसे सिरिल का पत्थर-नुमा हृदय भी न रोक सका। सिरिल ने खीज कर कहा—"श्रीकान्त, आंसू हार के प्रतीक हैं। तुम्हें तो प्रसन्न होना चाहिए कि तुम्हारी पत्नी मर गई। पेट से थी न ? अच्छा हुआ जो मर गई ! तुम्हारी स्त्री नहीं मरी, सड़कों-सड़कों आवारा फिरने वाला, एक छोकरा मर गया। फुटपाथों पर, मैले-कुचैले वस्त्रों में लिपटा···एक निहायत मामूली जीवन जीने वाला एक निहायत मामूली इन्सान मर गया। अच्छा हुआ, जो तुम्हारी पत्नी मर गई।"

पंडितजी पिनक गये—"महाशय ! समय कुसमय का तो तनिक विचार कीजिए। हर समय भाषण अच्छा नहीं लगता। यह शोक का घर है, भाषण का मंच नहीं। कौन जानता है कि आनेवाली सन्तान कोई महान···"

सिरिल बीच में ही बोल पड़ा—"यही न, ऊंचे ओहदे पर जा जमती। फिर भी अच्छा हुआ, जो श्रीकान्त की स्त्री मर गई।···एक बेरोजगार ग्रेजुएट मर गया। प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने वाला कोई आर्टिस्ट मर गया···बात-बात पर घूस लेने वाला कोई अधिकारी मर गया। तुम लोगों की तरह पादरी, पंडित या कोई मुल्ला मर गया···जिसका काम है, भाई को बहन से जुदा करना···मां को बेटी से अलग करना···आजकल प्रत्येक पेट वाली औरत को मर जाना चाहिए। जब मैं सुनता हूं, कि किसी मां

बनने वाली स्त्री का देहान्त हो गया तो बेहद प्रसन्नता होती है।"

सिरिल के समक्ष किसी की भी नहीं चली। सभी जैसे सठिया गये। फिर सिरिल के ही प्रयत्नों से लाश लाई गई। जिसके शरीर पर श्रीकान्त ने हाथ भी रखा था तो सहम कर, आज उसी फूल से शरीर को उसने अपने हाथों अग्नि के हवाले किया। शव जलने की गंध उठी—जिसके बालों की खुशबू में श्रीकान्त डूब जाया करता था, आज उसी शरीर की गंध से उबकाई आ रही थी···जिसका कभी पाणिग्रहण किया था उसने, उसी को सदा के लिए पानी में छोड़ दिया।···

श्रीकान्त को, सिरिल अपने घर ले आया। मां और उसके मध्य श्रीकान्त का दर्द कुछ-कुछ गलत होने लगा।···

बारह

इवा अकेली बैठी रेजी की प्रतीक्षा कर रही थी। चार-पांच दिन तो सफर में ही लग गये थे। जब से वे बम्बई आये हैं, रेजी नौकरी की तलाश में सुबह-सुबह निकल जाता। लौटता शाम गये।

इवा ने अपना नया घर देखा—एक नन्हीं-सी कोठरी, यही ड्राइंग-रूम, स्लीपिंग-रूम और डाईनिंग-रूम साथ में रसोई और स्नान गृह। अब इसी में उन दोनों का, वही प्यार पनपने वाला था, जिस की जड़ कहीं और थी···दूर बहुत दूर।

रेजी आया—थका-हारा। उसे देखते ही इवा उठी। बिना प्रश्न किये, कोट उतारने लगी। रेजी ने प्यार से कहा—"इवा तुम कितनी अच्छी हो!"

—"सच?"

—"फिर भी मैं तुम्हें कितना कष्ट देता हूं।"

—"परन्तु मैंने तो कभी अनुभव ही नहीं किया।"—और वह हंस पड़ी।

रेजी शान्त रहा। टाई खोलती हुई, वह बोली—"रेजी, अब तो ास के रुपये भी चुकने पर आये और तुम्हें काम नहीं मिलता···ईश्वर की कृपा से तो मैं भी पढ़ी-लिखी हूं, यदि आज्ञा दो तो मैं ही कोई···"

रेजी ने उसे टोक कर कहा—"इवा, तुम काम करोगी नौकरी ! और मैं बैठा-बैठा रोटी···! तुम सड़कों-सड़कों फिरोगी और मैं··नहीं-नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। नारी, पुरुष की इज्जत हुआ करती है। प्रत्येक पुरुष, किसी-न-किसी नारी के पवित्र आंचल में अपनी लाज बांध दिया करता है···फिर यह उस औरत पर निर्भर करता है, कि वह उसे संजो-कर रखे अथवा सड़कों की धूल पर फेंक कर नीलामी कर दे।"

इवा चुप खड़ी रही।

रेजी ने पुनः कहा—"जीते-जी मर जाऊंगा इवा, परन्तु तुम्हें नौकरी नहीं करने दूंगा। नौकरी की क्या चिन्ता, आओ प्रार्थना करें।"

दोनों अपनी छोटी-सी वेदी के करीब गये। जीसस और मेरी की तस्वीरों के समक्ष उनके घुटने झुक गये। रेजी के हाथ में रोजरी थी। इवा ने बाइबिल के पृष्ठ उलटे। वह पढ़ने लगी "आस्क एण्ड इट शैल बी गिविन ! सीक एण्ड ये शैल फाइंड। नाक एण्ड इट शैल बी ओपन्ड अंटू यू।···"

और फिर प्रार्थना के पश्चात्···आमीन !

रेजी ने मुस्कारा कर कहा—"इवा ईश्वर ने तो स्वयं प्रतिज्ञा की है, जो मांगेगा उसे दिया जायेगा। तो क्या हमारे मांगने से हमें एक छोटी-सी नौकरी भी नहीं मिलेगी ?"—कांपते, परन्तु विश्वास भरे स्वर में वह बोली—"हां रेजी, ईश्वर जरूर हमारी सुनेगा।"

जब से रेजी नौकरी करने लगा है, इवा के लिए कुछ-न-कुछ अवश्य ले आता। वह लाख मना करती—व्यर्थ का खर्च ! ···कुल जोड़-जमा 150 रुपये तो कमाते हो। 50 रुपये घर का किराया, रहा 100 रुपये इसी में महीने भर की गाड़ी चलानी पड़ती है। तो इसमें भी कट कर देते हो।"

रेजी हंसता—"पगली !···किसी गैर के लिए थोड़े ही लाता हूं। तुम्हारे लिए ही तो लेकर आता हूं। वेतन की वात करती हो···यदि उस में कट नहीं करूंगा, तो डर है कहीं तुम ही न मुझे कट कर दो डियर !" और वह हंस पड़ा।

फिर रुककर वोला, "तुम भी तो मेरा बहुत ख्याल रखती हो।"

—"और तुम भी तो मेरा ख्याल रखते हो।"

—"हां···बस यही समझो कि अभी रखता हूं।"

इवा चौंक गई। घबरा कर पूछ बैठी—"क्या मतलब ?"

—"यही कि···जब मेरा मुन्ना आ जायेगा तो···तो तुम्हें पूछे मेरा अंगूठा !"

इवा लजा गई।

रेजी ने फिर उसे छेड़ा—"अच्छा वताओ न, नाम क्या रखोगी ?"

—"धत् ! मैं क्या जानूं।"

—"अरी इवा, बड़ी मुश्किल हुई !"—रेजी गम्भीर हो गया।

—"क्या ?"—इवा अचकचा गई .

—"सुनो, मैंने तो यह सोचा ही नहीं।"

—"क्या ?"

—"यही, कि कहीं मुन्नी हो गई तो !"

—जाओ, नहीं बोलती, बहुत तंग करते हो।"—इवा रूठ गई। उसे मनाते हुए रेजी बोला—"अच्छा देखो, मुन्नी हुई तो नाम तुम रख लेना और यदि मुन्ना हुआ तो नाम रहेगा पिता की ओर से—वसन्त।"

इवा लजाकर भाग गई। जाते-जाते बोली—"जाओ, मुंह हाथ धो लो, चाय लाती हूं।"

रेजी उठकर गुस्लखाने की तरफ चला गया। इवा अभी तक इसी मीठी अनुभूति से भीतर-ही-भीतर गुदगुदी-सा अनुभव कर रही थी।

तेरह

स्टॉप तो वैसे कुछ आगे पड़ता था, परन्तु बस कुछ पीछे ही रुक गई, क्योंकि भीतर एक शोर-सा था—हंगामा !

—"अपवित्र कर डाला। पूजा की समस्त सामग्रियां नष्ट हो गईं।"

—"कैसे भाई ?"

—"चमार कहीं का···साले ने स्पर्श कर दिया।"

—"कौन चमार, कैसा चमार ?"—बस से कुछ आवाज़ें उठीं।

—"अरे और कौन, यही बस-कण्डक्टर ! ख़ूब जानता हूं मैं, इसका पिता वर्षों से हमारे इलाके में कमाता आ रहा।"—किसी पंडितजी ने कहा।

—"बाप कमाये और बेटा कण्डक्टर ! ···शिव-शिव!"—अन्य कई यात्री परे हटने लगे।

इस अपमान से बस-कण्डक्टर का मुंह उतर गया। आंसू अब गिरे, तब गिरे। हाथ में टिकटों को गड्डियां और कन्धे पर पैसे से भरी थैली लटकाये हुए वह स्वयं को संसार का सबसे अधिक निर्धन प्राणी समझ रहा था।

—"चमार कहीं का !"

—"परन्तु इसका क्या दोष, सारी करी-कराई तो सरकार की है जनाब !"—किसी ने अपनी राय दी।

कुछ सहारा-सा पाकर पण्डितजी बोले—"यह भी कोई सरकार है ···हुंः ! हरिजनों की आड़ लेकर, सभी स्थानों में डोम-चमारों को तो भर रखा है। यदि ये लोग हरि के जन हैं, तो क्या हम शैतानों के जन हैं ? इससे तो भला अंग्रेजों का राज था। इस प्रकार का अन्याय तो नहीं होता था, कम-से-कम।"

बस रुकी थी। बात बढ़-बढ़कर शोर का रूप धारण कर चुकी थी। तभी सिरिल उधर से आ निकला। सारी स्थिति जानकर उसने कहा—"अब शान्त भी रहिए बाबा !"

—"शान्त और इस चमार के समक्ष ! सरकार ने सिर चढ़ा रखा

है, तो इसका यह अर्थ नहीं कि हम भी···" टोक कर सिरिल ने कहा—"सरकार ने कौन-सा ऐसा अपराध कर दिया है, जो इतना शोर कर रहे हैं आप ! ···उसने तो बस इन्सान-को-इन्सान का अधिकार दिया है। यह कण्डक्टर मैट्रिक पास है। इसमें इतनी योग्यता है कि यह कण्डक्टर बने। सरकार ने तो योग्यता की परख की है। उसने आदमी देखा है—चमार और पंडित नहीं। कल यदि आपका पुत्र, इस चमार के पुत्र से योग्यता में कम रहे, तो यह निश्चित मानिए, आपका सुपुत्र उसके द्वारा शासित होगा।"

—"क्या कह रहे हो तुम ?"

—"बिल्कुल सही कह रहा हूं, पण्डितजी ! ···सरकार का यह कदम जायज है, इसके लिए दोष देना मूर्खता है। जो ठीक है, उसे ठीक कहना चाहिए। परन्तु सरकार को गालियां देने की आप लोगों की आदत-सी पड़ गई है।"

पण्डितजी का मुंह उतर गया।

सिरिल आवेश में बोलता रहा—"यह कण्डक्टर, इन्सान होकर स्वयं को चमारों में गिनता है और आप···पण्डित होकर खुद को···कितना गहरा फर्क है।"

—"अन्तर ?"

—"हां पण्डितजी, अन्तर ही···बहुत बड़ा अन्तर ! आप पण्डित हैं। पण्डित का अर्थ है, 'विद्वान'। किन्तु खेद है, आप विद्वान होकर भी मानव को मानव से पृथक मानते हैं। पण्डित होकर भी इस चमार की कोई कीमत नहीं आंकते।"

पण्डितजी की समझ में सिरिल की बातें खोपड़ी में उतर कर भी नहीं उतर रही थीं। उन्होंने आश्चर्य से पूछा—"कैसा मूल्य ? इस नाम के उच्चारण से तो जिह्वा भी अपवित्र हो जाती है···!"

इस बार सिरिल की पेशानी पर कुछ लकीरें उभर आईं। उसने पुराने ही लहजे में कहा—"बहस करने से कोई लाभ नहीं। मैं तो केवल इतना भर जानता हूं, कि अब हमारी देह स्वतन्त्र है, हमारा देश आजाद है···हम सब स्वतन्त्र देश के स्वतन्त्र नागरिक हैं। जितना हक आपका,

उतना हक मेरा···उतना ही इस चमार का भी है।"

फिर बात जहां की तहां तह पा गई। जाने वाले यात्रियों को जाने की शीघ्रता थी। वे शोर करने लगे। किसी ने कहा—"पण्डितजी, यदि आपको नहीं जाना है, तो कृपया उतर जाने का तो कष्ट करें···दूसरों का समय भी अमूल्य होता है, नष्ट करने से लाभ!"

सब सुन कर भी पण्डितजी नहीं उतरे। सिरिल ने कण्डक्टर के कंधे पर हाथ रखकर कहा—"आज इस देश का हर नागरिक समाजवाद का सपना देख रहा है। मगर दुःख है, इस देश में ऐसे लोगों की कमी नहीं, जो अपनी कुर्सी और आवाज ऊंची रखने के लिए सरकार की सही नीतियों का भी विरोध करते हैं···अपनी गलत दलीलों से भोली-भाली जनता को बहकाते हैं।···भई, इनकी बातों का बुरा नहीं मानना। मैं सबकी ओर से क्षमा मांग लेता हूं।"

सिरिल के इस व्यवहार से कंडक्टर के चेहरे पर थोड़ी रौनक आई तो पण्डितजी ने मुंह खिड़की के बाहर कर, 'पिच' से थूक दिया।

बस चल दी, पण्डित और चमार को एक साथ लेकर···।

चौदह

श्रीकान्त घर लौट जाना चाहता था। सिरिल के साथ रहकर उसका गम कुछ कम हो गया था।

दोनों स्टूडियो में बैठे थे। श्रीकान्त ने बात छेड़ी—"अब तो यहां से जाने का विचार है।"

कैन्वस पर चलती उगलियां थम गईं। सिरिल ने चौंक कर पूछा—"इतनी जल्दी?"

—"जल्दी कहां भाई! और कितना बोझ बनूं। वैसे भी, तुमने मेरे ऊपर बहुत एहसान किए हैं।"

—"बोझ और एहसान! पागल हो गए हो? जब तक जी में आए,

रहो। यह तुम्हारा अपना ही घर है, इसे पराया मानते हो दोस्त ?"

—"नहीं-नहीं, पराया और यह घर ! यह तो मैं स्वप्न में भी नहीं सोच सकता। लेकिन ज़िन्दगी ने जो सजा मुझे दी है, वह स्वयं ही भुगतनी चाहिए।"

तभी सन्नो स्टूडियो से होकर ऊपर जाने लगी। सिरिल को काम करते देख, वह उसके निकट आ गई—"बहुत अरसे बाद नई तस्वीर बना रहे हो ?"

सिरिल मुसकुराया—"हां, बस जरा जी बहलाने के इरादे से।"

सन्नो हंस पड़ी—"तुम भी कमाल के मर्द हो ! जाने कैसे तस्वीरों से जी बहला लेते हो।"

उसकी इस उक्ति से श्रीकान्त को हंसी-सी आ गई। बड़ी-बड़ी आंखों से सन्नो को निहारने लगा। सिरिल ने टोक कर कहा—"भई, इतने हैरान क्यों हो, हमारे ही पड़ोस में रहती है।"

सन्नो लजा-सी गई। और श्रीकान्त भी सेंध पर पकड़े गए चोर की तरह कठिया गया। सिरिल ने कहा—"और सन्नो, यह अपना दोस्त, श्रीकान्त है। हाल-फिलहाल बेचारे की स्त्री का देहान्त हुआ है। हां, इसके बारे में एक बात तुम्हें बता दूं···यह बहुत जिन्दादिल इन्सान है। यदि मेरी बातों···जजबातों को सही शक्ल अगर कोई देगा, तो यही श्रीकान्त। इस पर मुझे उतना ही भरोसा है, जितना तुम अपने खुदा पर करती हो।"

सन्नो को मजाक सूझा—"ओ, तो यही हैं आपके खुदा ?"

सिरिल उसके कटाक्ष को समझ गया। उसने कहा—"सन्नो, मैं भगवान और खुदा में कम विश्वास करता हूं···उससे ज्यादा मैं मनुष्य को, इन्सान को ऊंचा दर्जा देता हूं—यदि वह वास्तव में इन्सान हो। इस संसार में भगवान से कोई आशा-उम्मीद नहीं। जो कुछ यहां क[illegible] नाम मानव करता है। पैरों पर झुकता भी है, झुकाता भी है। खुद [illegible] है, दूसरों को रूलाता भी है। खुद हंसता है, दूसरों को हंसने [illegible] उसने भी देता है। आज का सच्चा इन्सान ही कल का भगवान होता [illegible] केवल उसकी पूजा तो करते हैं, मगर उसके गुजर जाने के बाद। उसकी मौत के पश्चात् उसे ईश्वर और खुदा का स्थान देते हैं।···यही मानवता की सब

से बड़ी ट्रेजेडी है।"

सन्नो जाने लगी। जाते-जाते उसने कहा—"अच्छा, मैं तो अम्मा से मिलने चली और आप बैठ कर अपने ईश्वर की पूजा कीजिए।"—और वह हंसती हुई ऊपर भाग गई।

सिरिल ने कहा—"श्रीकान्त, कुछ गलत अर्थ न लगा लेना। यह तवायफ जरूर है, मगर शरीफों से कहीं ज्यादा शरीफ है। बस, इसे जरा सहारा मिलना चाहिए···। कोई उठाने वाला चाहिए···मेरा तो दावा है, ये लोग भी शरीफ घरों में मां···बहन···और पत्नी का रूप ले सकती हैं। उस जिम्मेदारी को बखूबी निभा भी सकती हैं।"

—"मैं तुमसे सहमत हूं, सिरिल! मैं चाहता हूं कि इनकी तरह ही तुम मुझे भी मौका दो, कि मैं अपने सहारे जीने की आदत डालूं। मुझे यहां से जाने दो।"

सिरिल ने पूर्ण विश्वास के साथ कहा—"तुम जाना चाहते हो, जाओ। मैं रोक भी कैसे सकता हूं। परन्तु केवल एक सीख अन्त तक स्मरण रखने की पुनः याद दिलाऊंगा, जीवन जीने के लिए पत्थर बनना आवश्यक है। किसी के पीछे टूट जाने पर शोक करना मूर्खता है। यह जिन्दगी···यात्रियों से भरी एक बस है। इसका काम है, हर स्टॉप पर रुकना। उतरने वाले उतर जाते हैं। और प्रत्येक स्टॉप पर कोई न कोई नया मुसाफिर चढ़ जाता है। जाने वाले की चिन्ता व्यर्थ होती है···साथ वाले के लिए सोचना समझना बुद्धिमानी।···पत्थर बनो, तो जीवन से लड़ सकोगे और यदि पानी बने रहे, तो बह जाओगे···"

इस बार श्रीकान्त ने कहा—"परन्तु पानी ही तो जम कर ठोस बन जाता हैं—बर्फ। मैं भी ऐसा ही बनूंगा, अवश्य बनूंगा।"

सिरिल प्रसन्न हो गया। उसने उठकर श्रीकान्त का कन्धा थाम लिया। हंसकर बोला—"तुम···तुम सचमुच मेरे स्वप्न हो। वह स्वप्न, जो सदा [illegible] भोर साकार हुआ करता है।"

[illegible] "यूं कहो न, कि भोर का सपना।"—श्रीकान्त ने चुटकी ली। [illegible] जाने को उठा—"चलो, मां से जरा भेंट कर आयें।"

[illegible]नों सीढ़ियां चढ़ने लगे। सिरिल ने कहा—"सब तो हुआ, हां···

चुनाव वाली बात मत भूलना इस बार जमके काम करना है।"

श्रीकान्त ने स्वीकृति में सिर हिला कर कहा—"अभी से ही कोशिश करूंगा।

फ़िर दोनों मां के पास गए। श्रीकान्त उनके चरण-स्पर्श को आगे बढ़ गया। मां की आशीषों का भण्डार खुल गया।

पन्द्रह

सिरिल ने पढ़ाई में ढील दे रखी थी। सन्नो को समय ही नहीं मिलता कि वह पढ़ाई के लिये वक्त दे सके। फिर भी जब मन नहीं लगता, तब वह उठकर सन्नो के यहां चला जाता। सन्नो की निकटता उसके लिए वरदान-सी थी।

सन्नो खाट पर लेटी थी और दोनों बच्चे वहीं जमीन पर मिसक रहे थे। महरी उन्हें बहलाने का प्रयास कर रही थी। सिरिल के आते ही सन्नो ने उसे बैठने के लिए कहा। बैठते हुए सिरिल ने पूछा—"क्या तकलीफ है इन्हें ?"

—"कुछ भी नहीं।"

—"परन्तु ये तो रो रहे हैं।"

—"बच्चों का काम ही रोना-हंसना है, इसमें ताज्जुब ही क्या ?" तभी मुन्नी रोने लगी।

—"बात क्या है, सन्नो !"

कुछ चिढ़कर सन्नो ने कहा—"बात क्या होगी। दोनों-के-दोनों नखरीले, बड़े जिद्दी है। बेकार की रट···मिठाई खाना चाहते हैं। मैं पैसे कहां से लाऊं, कोई खजाना गड़ा है।"

परन्तु सिरिल ने देखा, इतना कहते-कहते सन्नो का चेहरा उतर गया था। उसकी आंखें भी पुरनम थीं। वह कुछ कहने ही जा रहा था

कि एक छोकरा भीतर आया। सिरिल को देखकर वह ठिठक गया!

—"क्या है रे ?" सन्नो ने पूछा।

लड़का चुप रहा। उसकी आंखें सिरिल पर थमी थीं।

—"अरे बोल न, इनसे क्या पर्दा!"

—"बड़े बाबू आये हैं···मुज़रा की खातिर।"—कहते-कहते छोकरा रुक गया।

—"देख, उन्हें कह दे, हम मजबूर हैं। शाम के वक्त सुना देंगे···गाना कौन-सी बड़ी चीज़ है।"

छोकरा चला गया। सिरिल ने पूछा—"सन्नो, यह बड़े बाबू कौन हैं ?"

—"बड़े बाबू ? अरे यहां सभी तो बड़े-बड़े ही आते हैं। छोटे आते ही कहां हैं। जिनके पास रुपयों के पैर हैं, वे ही तो कोठों पर आते हैं—वे ही तो इन कोठों के असली मालिक हैं।···हम लोग तो बस खिदमतगार हैं।"

सिरिल ने पूछा—"फिर भी ये साहब हैं कौन ?"

—"हमारे यहां का यह रिवाज नहीं कि किसी को बताया जाये कि कौन-कौन आता है और कौन···कौन है। कितने ही आते हैं। परन्तु हम यह नहीं बताते, कि यहां कौन-कौन आता है।"

—"देखो सन्नो, 'मैं' 'हम' की बात नहीं, 'मैं' की बात कर रहा हूं।"

—"हां, हां, मैंने तुमसे न छिपाया है, न छिपाने की जुर्रत ही करूंगी। वह इस शहर के बहुत बड़े वकील हैं—बनर्जी साहब।"

—"बनर्जी साहब ?"···सिरिल चौंक गया—"वही जो बड़े-बड़े लोगों के बीच भी बड़े हैं ? जो बड़ी-बड़ी सभाओं के सभापति होते हैं ? वही बनर्जी, जो लम्बे-लम्बे भाषण देते हैं···गांधी और नेहरू के जीवन का अनुसरण करने को कहते हैं वही बनर्जी साहब ?"

छोकरा पुनः आ गया—"बाईजी, वह सिनेमा चलने को कहते हैं।"

—"सिनेमा? नहीं। कह दे कि आज नहीं जा सकती।"

छोकरा जाने लगा तो नौरी ने कहा—"सन्नो बीबी, चली जाओ न,

काहे को खफा करती हो। कहीं बिगड़ गये, तो महीना ही बन्द कर देंगे।"

सिरिल चौंक गया—"महीना ?"

—"हां सिरिल, दो सौ रुपये देते हैं मुझे। मैं उनकी रखैल भी तो हूं"—सन्नो का स्वर भीग गया।

—"तो चली क्यों नहीं जातीं ?"

—"कैसे जाऊं···रोजे से हूं।"

—"उपवास करती हो ?"

—"हूं···रमजान जो है।"

—"तुम और रोजा···"

—"क्यों, ताज्जुब हो रहा है ?"

—"नहीं, बस यूं ही।"

—"हां, गन्दी जो हूं···भला मैं कैसे रोजा रखूंगी! मुझे इसका हक ही कहां है।" फिर छोकरे से बोली—"जा कह दे, मैं नहीं जाऊंगी। अरे हां, कहां हैं ?"

—"वहां, बड़ी दुकान के पास उनकी गाड़ी रुकी है।"—और वह लड़का चला गया। उसके जाने के बाद सन्नो बुदबुदाई—'महीना बन्द कर देंगे, तो कर दें···मजहब के कानून तो तोड़ नहीं सकती।'

सिरिल अब तक कुछ सोचने में व्यस्त हो गया था। उसे इंगित कर सन्नो ने कहा—"क्यों, किस ख्याल में डूबे हो ?"

सिरिल जैसे सोते से जग गया। फिर कुछ सोचते हुए उसने कहा—"लोग तुम्हें गन्दी कहते हैं···और तुम मजहब के नाम पर उपवास करती हो। सिनेमा नहीं जातीं। बच्चों की मिठाई की चिन्ता न कर, धर्म का विचार करती हो। महीना बन्द होने की फिक्र नहीं रहती !···परन्तु सन्नो, हमारे समाज में ऐसे भी धार्मिक लोग हैं, जो उपवास के दिन भी किसी नाजायज काम में नागा नहीं करते !"

सन्नो भौंचक-सी उसे देखती रही। और सिरिल देख रहा था एक गन्दी औरत को, एक अपवित्र लड़की को···उसको समझ में नहीं आ रहा था, वह उसे किस कोटि में रखे···।

सोलह

समय बहता रहा।

एक लम्बी अवधि बीत गई। इस बीच जब-तब सिरिल के घर श्रीकान्त आ जाया करता। अब वह सन्नो के लिए भी नया नहीं रहा।

चुनाव नजदीक आ गया।

सिरिल चाहता था कि उसके इलाके से एडवोकेट मदनमोहन जीतें, क्योंकि सत्ता के टिकट पर खड़े होने वाले सज्जन श्री घोंघा बसन्त मिश्र, और कोई नहीं, वही बस वाले पण्डित जी थे--जिन्होंने सरकार को खुल कर गालियां दी थीं। पण्डितजी से अधिक आश्चर्य उसे उनके दल पर हो रहा था, जिसने ऐसे 'योग्य' व्यक्ति को टिकट देकर खड़ा किया था, जो उसे ही हर दृष्टि से 'अयोग्य' मानता था। जिसकी नजरों में विदेशी सरकार ही भली थी···।

इस बीच, प्रचार को लेकर सिरिल काफी व्यस्त रहा। वोट पड़ने के कुछ दिन पूर्व एक दुर्घटना घट गई। सिरिल और श्रीकान्त में कुछ आवश्यक बातें हो रही थीं, तभी एक लड़का दौड़ा-दौड़ा आया--"सिरिल भैया, सिरिल भैया···"

—"क्या है राजू?"

राजू बुरी तरह हांफ रहा था।

—"क्या बात है राजू?"

राजू ने हांफते हुए कहा—"आपने गनेशी को कुछ जिम्मेदारियां दे रखी है। वह मुकर गया है। रुपये देकर पण्डितजी के लिए वोट खरीदना चाहता है।"

सिरिल कुछ सोच में पड़ गया। श्रीकान्त ने कहा—"तो जाने भी दो। अब सोचने से क्या होगा।"

सिरिल ने सिर उठाया—"कुछ नहीं श्रीकान्त। अब निर्णय का अन्दाजा लगाना सम्भव नहीं। इस इलाके के वोट हमारे लिए बहुत कीमती हैं।"

बीच में ही राजू ने टोका—"तो क्यों नहीं गनेशी से ज्यादा रुपये देकर हम वोट खरीद लें।"

—"नहीं-नहीं, ऐसा नहीं होगा!"—सिरिल क्रोध से कांपने लगा—"वोट, मत···ये अमूल्य मसले हैं। रुपये-पैसे से इसका क्या सम्बन्ध। हमें क्या अधिकार है, कि हम लोगों के अधिकार खरीदें! हमें इस पाप का हक नहीं। वोट का अर्थ मत नहीं···मन होता है। हमें किसी के मन का सौदा करने का अधिकार नहीं। मैं तो थूकता हूं उस आदमी पर, जो वोट खरीदता है और साथ ही उस आदमी पर भी थू, जो अपना मत बेचता है।"

तभी श्रीकान्त ने कहा—"मेरी एक बात मानोगे सिरिल?"

—"क्या?"

"तुम यहां के लिए पुराने हो। तुम्हारी बात लोग मानेंगे। मेरा विचार है, तवायफों और वादकों की तुम एक मीटिंग बुलाओ। अपनी बात उन्हें समझाओ। हो सकता है, इसका कुछ अच्छा ही नतीजा निकले।"

सिरिल ने स्वीकृति में सिर हिलाया।

सन्नो के प्रयास से सिरिल मीटिंग बुलाने में सफल हुआ। तवायफों और वादकों से जब सन्नो का कोठा भर गया तो सिरिल ने कहना शुरू किया—"वोट के दिन नजदीक आ गए हैं। जितने भी बालिग लड़के-लड़कियां हैं, सभी को वोट देने का अधिकार है। अब तक हम बिकते आए हैं, मगर इस बार काफी सोच-विचार कर अपना नेता चुनना होगा। सही आदमी का चुनाव करने पर ही हमारे दिन फिरेंगे।"

तभी एक बुढ़िया ने कहा—"अरे भैया, भोट के बाद हमारे दिन फिरें या न फिरें, हम तो सिर्फ इतना जानते हैं कि भोट के दिन आने से हमारे भी दिन फिर जाते हैं। इस उमर में भी अपनी पूछ होने लगती है। सच्चे कहते हैं, भोट लेने वाले गाड़ी लेकर आते हैं, ऐसा छुछवाते हैं, ऐसी खुशामद करते हैं कि हमें जवानी में भी किसी ने ऐसा नहीं पूछा था।"

उसकी बात खत्म होते ही एक और बुढ़िया कहती है—"पिछली बार हमने दो बार भोट गिराए। एक बार ऐसे ही। दूसरी बार बुरका पहन कर। एक-एक बार के पांच-पांच रुपये मिले थे।"—फिर गहरी

सांस लेकर बोली—"अब बड़ी महंगाई आ गई है। इस बार तो हम दस रुपये एक भोट का लेंगे···अरी, तुम सब तो जवान-धवान हो, जब भोट में इस बुढ़िया का रेट बढ़ जाता है, तो तुम सब भी अपना रेट बढ़ा देना —बीस से कम मत लेना, हां ! मरदुए नाक रगड़ कर देंगे।"

सिरिल ने लगभग चीख कर कहा—"चुप भी कीजिए, वोट आपका जिस्म नहीं कि आप इसे दस-पांच रुपये में बेच दें। वोट आपका अधिकार है। आपका हक है। और आज, ये जो देश तबाही के किनारे खड़ा है, इसकी एक वजह यह भी है कि आप जैसे लोग अपना अधिकार बेचते रहे हैं। अपना हक उन सूदखोरों और व्यापारियों को बेचते रहे हैं, जो गद्दी मिलने के बाद देश को बेचते रहे हैं।"

सिरिल के चुप होते ही, कमरे में एक चुप्पी छा गई। थोड़ी देर के बाद सन्नो ने कहा—"ये ठीक कह रहे हैं। हमें अपना हक बेचना नहीं, लेना चाहिए···"

बीच में ही पहले वाली बुढ़िया ने हाथ नचा कर कहा—"बोल ले बेटी, बोल ले। अभी जवान है, जवानी का खून है। मगर हम तो एक ही बात जाने हैं—इस कोठे पर हम कुछ लेने के लिए नहीं बेचने के लिए बैठे हैं।"

—"तब तुम ही कहो बुआ।"—सन्नो ने कहा—"अपना सब कुछ बेचने के बाद, आज तुम्हें क्या मिला है ? पहले तुम बिकती थीं, आज तुम्हारी बेटी बिकती है, कल तुम्हारी बेटी की बेटी बिकेगी···और यह सिलसिला कभी खतम नहीं होगा। इस खरीद-बिक्री को बन्द करना होगा बुआ। और यह तभी हो सकता है, जब हम सही आदमी का चुनाव करें···"

फिर वह दिन भी आया जब वोट पड़ने लगे। यह चुनाव भी गजब का था। कोई अनुमान लगा पाना सम्भव न था। निश्चित समय समाप्त होने पर आया। अधिकारी ने घड़ी देखी। तभी एक व्यक्ति ने आकर अपना वोट डाला। अन्तिम समय···अन्तिम व्यक्ति।

सभी अपने-अपने घर जाने लगे। पण्डित घोंघा बसंत मिश्र भी उपस्थित थे। श्रीकान्त और सिरिल ने राहत का अनुभव किया। इधर

दोनों ने जी तोड़ परिश्रम किया था। पण्डित जी भी यथा समय लौट गए और एडवोकेट मदनमोहन भी।

चुनाव का परिणाम निकला।

पण्डित घोंघा बसंत मिश्र मात्र एक वोट से पराजित हो गए। उन्हें गहरा सदमा पहुंचा। उनकी आशाओं पर पानी फिर गया। और वे खो गए······लौट चले अन्तिम दिन की ओर···उनकी आंखों के आगे, अन्तिम दिन के साथ-साथ अन्तिम व्यक्ति घूम गया। अन्तिम व्यक्ति···जिसने अपना अमूल्य मत देकर, फैसला एडवोकेट मदनमोहन के पक्ष में कर दिया था वही चमार बस कन्डक्टर···एक मामूली चमार का एक मामूली सा वोट···और पण्डित जी के कानों में सिरिल की बातें घूमने लगीं—'हम स्वतंत्र देश के नागरिक है। जितना हक आपका है ··उतना ही मेरा ···उतना ही अधिकार इस चमार का भी है···'

पण्डित जी सिर से पांव तक कांप गए। उनकी आंखों के आगे धरती घूमने लगी। सिरिल और श्रीकान्त खुश थे, क्योंकि आज एक सही और ईमानदार आदमी की जीत हुई थी। लोगों की जय-जयकार और फूल मालाओं से एडवोकेट मदनमोहन लद गये।

सिरिल ने उनके पास आकर कहा—"मुबारक हो एडवोकेट साहब। मगर देखिये, विजय पर गर्व मत कीजिएगा। घमण्ड ही वह काई अथवा चिकनाई है, जिस पर बड़ों-बड़ों के कदम फिसल गये हैं। यह जीत उन लोगों की है, जिन्होंने अपना एक-एक मत आपको दिया है। विजय आपकी नहीं, उन लोगों की हुई है···आपने तो केवल उनका मन-भर जीता है और अब आपको उन पर शासन नहीं करना है, बल्कि उनकी सेवा करनी है।"

"एडवोकेट मदनमोहन ने सिरिल को गले से लगा लिया। फिर हाथ बढ़ाकर उन्होंने श्रीकान्त को समेट लिया—"मेरा भरोसा करो, लोगों ने जो विश्वास दिया है, उसकी हत्या नहीं होगी।"

तभी श्रीकान्त ने कहा—"चलो भाई यह खुशखबरी मां को सुना दें।"

दोनो चल पड़े।···

सत्रह

'वसन्तो' एक महीने का हो गया। घर का खर्च और भी बढ़ गया। परन्तु रेजी है कि उसे तनिक भी चिन्ता नहीं। पहले वह वेतन ला कर इवा के हाथ पर धर देता था और अब···कई दिनों से वह जिद कर रही है कि उसे खांसी है, कोई-सी भी दवा ला दे। परन्तु रेजी है कि सुनी-अनसुनी कर टाल देता है। अब तो उसकी लापरवाही के कारण इवा ने टोकना भी छोड़ दिया। वह कहती कुछ नहीं मन-ही-मन अनुभव करती है अब! उसका विश्वास है, रेजी का कोई दोष नहीं···सब शहर का प्रभाव है। बड़े-बड़े लोगों के मध्य···बड़े शहर में छोटों को बिसरा देना तो सहज स्वाभाविक ही है।

घर पर रहता भी कहां है रेजी! सुबह से ऑफिस और शाम होते ही 'बैट' ले कर निकल जाता है। जब से पादरी साहब यहां बदल कर आये हैं, रेजी का अधिकांश समय वहीं व्यतीत होता है। सामने दालान में बैडमिन्टन कोर्ट बना है। खेल जमता है। पादरी साहब बाहर कुर्सी पर बैठते हैं। हाथ में बाइबिल···कभी बाइबिल पढ़ते हैं तो कभी खेल का मजा लूटते हैं। रेजी के अतिरिक्त और भी लोग आते हैं। आयें भी क्यों नहीं, जहां मिठास होगी, वहां चींटी तो आती ही हैं। फिर पादरी की बेटी हन्ना तो खूबसूरत भी है।

शाम, बसन्तो को ले कर इवा खिड़की से लग जाती है। देखती, खेल चल रहा है···बीच-बीच में रेजी का स्वर उठता—"पार्टनर, सर्विस करो। हां, वह नया 'कार्क' लाओ। यह तो पुराना हो गया, एकदम बेकार··· इसे फेंक दो।"—फिर हवा में हाथ उठता और पुराना कार्क दूर-बहुत-दूर जा गिरता।···इवा की आंखों में आंसू भर जाते। वह सोचती, अब तो वह एक बच्चे की मां है। अब वह नयी कहां? अब वह हन्ना जैसी पार्टनर कहां रही! लोग खेल देखते और वह अभागी, टूटा कार्क देखती! ···देखती और सोचती—रेजी, यदि मैं तुम्हें छोड़ भी दूं, तो तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ेगा। तुम पुरुष हो···परन्तु मुझे तो केवल तुम्हारा ही सहारा रहेगा!···और वह बसन्तो को छाती से लगा कर सिसक पड़ती।

वसन्तो रेजी की गोद में था। तीनों सुबह का नाश्ता कर रहे थे। अनायास ही इवा को खांसी उठी। वह उठ कर गुसलखाने गयी। खांसते ही खून आ गया। खून ! वह चौंक गई। मुंह धो कर वापस आ गई।

—"क्या हुआ ?"—रेजी ने पूछा।

—"खांसी है, जरा-सी सर्दी लग गई है।"

—"ओह ! मैं तो भूल ही गया। आज तुम्हारी दवा ले आऊंगा।"

—"नहीं रेजी, पैसों का व्यर्थ व्यय उचित नहीं। दवा के बदले, मुन्ने के लिए एक नया बुश-शर्ट ले आना।

—"अच्छा ले आऊंगा।"—और वह उठ कर चला गया तैयार होने, क्योंकि उसे ऑफिस जो जाना था।

लगभग दस के, जब रेजी ऑफिस चला गया, तो इवा को डाक्टर के पास जाने की सूझी। परीक्षा आदि के पश्चात् डाक्टर ने कहा—"कोई विशेष चिन्ता की आवश्यकता नहीं। फिर भी अपनी हिफाजत करना हर रोगी का कर्तव्य है—प्रीकॉशन इज द् बैस्ट मेडीसिन !"

जब इवा चलने को हुई तो डाक्टर ने कहा—"कृपया आप अपने पतिदेव को भेज दीजिये ! मैं सारी स्थिति स्पष्ट कर दूंगा।"—इवा ने आश्चर्य से डाक्टर साहब को देखा।

—"अच्छा, भेज दूंगी।"—और वह मुन्ने को लेकर लौट आई।

□

अब हन्ना भी उस के घर आने-जाने लगी थी। वैसे उसका परिचय उससे पहले का ही था। परन्तु अब बात तो और ही थी। वह आते ही वसन्तो से चिपक जाती। वह भी एक शैतान, जब वह बिल्ली-सा मुंह बना कर म्याऊं बोलती तो खिलखिला कर हंस पड़ता।

हन्ना के आने से रेजी के चेहरे पर एक नई ताजगी तैर जाया करती है, इसका इवा ने एक नहीं, बीसियों बार अन्दाजा लगाया है। फिर भी वह कुछ नहीं बोलती। वह सब देखती, सब सुनती और फिर सब सह जाती—चुप-चुप !

उस दिन हन्ना बसन्तो से खेल रही थी। रेजी आया नहीं था। इवा

जोर-जोर से खांसने लगी। हन्ना बसन्तो को गोद में उठा कर दौड़ी आई।

—"क्या हुआ ?"

—"कुछ नहीं, कभी-कभी खांसी-सी उठ जाती है।"

—"ठण्ड लगी है ?"

—"शायद !"

फिर दोनों चुप हो गयीं। हन्ना ने पूछा—"बसन्तो को अपने घर ले जाऊं ?"

स्वीकृति में इवा ने सिर हिला दिया। हन्ना एक मुस्कान बिखेरती हुई बसन्तो को उठा कर चली गई। इवा जानती थी, यह बसन्तो का प्यार उसे यहां नहीं लाता है, आकर्षण का केन्द्र तो कोई और ही है।

थोड़ी देर बाद खांसी पुनः उठी। इवा गुसलखाने गयी। फिर वही रक्त···वही लाल खून···! इवा की आंखों में इस बार आंसू आ गये।

जब लहू दिन-ब-दिन बढ़ता ही गया तो इवा को सन्देह होने लगा। वह सोचने लगी···रेजी की तनख्वाह ही कितनी है। दवा-दारू सम्भव नहीं।···उसे अपना नहीं, बसन्तो और रेजी का भविष्य अन्धकारमय नजर आने लगा। यदि दवा में ही··· खर्च तो घर! रेजी तो एकदम अनाड़ी है। वह क्या सम्भाल पायेगा बसन्तो को। इसी प्रकार के अनेक विचार उसके दिमाग में आने लगे। वह बन्धन में बंध कर कशमकश का अनुभव करने लगी। इन्सान का सबसे बड़ा शत्रु उसका मन है। आदमी जितना ही मुक्ति का मार्ग ढूंढता है, उतना ही वह उलझ जाता है। जितना ही वह छुटकारा पाने का प्रयास करता है, उतना ही अधिक दुःखी होता है···मन, दुश्मन ! इवा को दर्द पीसने लगा।

कुछ विचार कर वह उठी। साड़ी बदल कर उसने बसन्तो को भी तैयार किया। फिर डाक्टर के यहां जाने को हुई। मन में कितने ही विचारों में गुथी-गुथी वह चल पड़ी।

डाक्टर ने देखा। सदा की भांति उसने फिर टालना चाहा—"देखिए, आप जरा भी घबरायें नहीं। बीमारी में हिम्मत हार जाना बुजदिली है। हां, आप से मैंने कहा था कि अपने···।"

बीच में ही टोक कर इवा ने कहा—"देखिए, मेरे वह तो आ नहीं सके

और न आ ही सकते हैं। आप मेरा खयाल कर, स्पष्ट होकर सब बता दें, तो बहुत कृपा होगी।"

—"आप भी पागलों की तरह···"

—"नहीं, अगर मुझसे छिपाया गया, तो मैं सचमुच पागल हो जाऊंगी।"

—"ऐसी बातें ठीक नहीं होतीं।"

इवा ने बसन्तो को डाक्टर के पैरों पर रख दिया। बोली—"तो कम-से-कम इस नन्हें का खयाल कर मुझे बता दें कि मैं और कितने दिन···"

डाक्टर उसे एकटक देखने लगा। तभी इवा ने कहा—"आप नहीं जानते डाक्टर साहब···बाप-बेटे का जीवन बनाने के लिए, मेरे पास मात्र एक ही साधन है। ऐसा न हो कि जब मैं मृत्यु के बहुत निकट रहूं, तो इसका एहसास कराया जाये·· उस क्षण मैं कुछ भी नहीं कर सकूंगी, डाक्टर !" और वह फूट-फूट कर रोने लगी।

डाक्टर ने मुन्ने को देखा। फिर उसने उठा कर अपनी बांहों में भर लिया। डाक्टर की आंखें अब भी मुन्ने पर जमीं थी। इवा ने पुनः कहा —"प्लीज डाक्टर, मेहरबानी कीजिए। इस बच्चे का भविष्य अब सिर्फ आपके सत्य पर है···"

डाक्टर ने साहस किया—"डाक्टर सत्य नहीं बोलता, केवल अनुमान लगाया करता है और मैं भी उसी अनुमान के आधार पर कह सकता हूं कि आपका जीवन लगभग एक साल और···।" तभी नर्स हड़बड़ाती हुई आई —"डाक्टर···डाक्टर बेड नं० 4 का मरीज।" डाक्टर नर्स के साथ चला गया।

इवा मोम-सी गल गई। बसन्तो रोने लगा। मगर वह··?

अठारह

कैन्वस ग्राइंड कर, सिरिल ने फ्रेम में लगाया। परन्तु उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह किस भावना, किस आकृति को रेखाओं में बांध कर मूर्त रूप दे। इसी उलझन में वह अकेला स्टूडियो में बैठा-बैठा कुछ का कुछ सोच रहा था, कि तभी मां आ गई।

मां के हाथों में चाय की प्याली थी। आते ही बोलीं—"चाय नहीं पीनी है ?"

—"हूं···" और वह हड़बड़ा कर उठ गया।

—"लो, पी लो।" और मां ने प्याली उसकी ओर बढ़ा दी। वह मां के हाथों से कप ले कर चाय पीने जा ही रहा था कि उसकी दृष्टि मां पर जा पड़ी और उनका मायूस चेहरा उसकी आंखों से छिपा न रह सका। उसने जल्दी से नजरें हटा लीं। वह चाय पी रहा था, परन्तु उसकी आंखें प्याली के भीतर से मां को देख रही थीं···बुझी-बुझी मां।

प्याली खाली हो गयी। मां ने प्याली उठाई और जाने को हुईं। सिरिल ने टोक कर कहा—"मां, कुछ उदास लगती हो ?"

—"आज चिन्ता जगी है !"—एक गहरी सांस के साथ ये शब्द निकले।

सिरिल चुप रहा।

—"तब, आखिर सोचा क्या ?"—मां का प्रश्न था।

इस प्रश्न की उसे आशा नहीं थी। वह चौंक-सा गया। उससे उत्तर देते न बन पाया। मां ने ही बात आगे को खींची—"इवा के जाने के बाद से मैं और भी अकेली हो गई हूं। यह अकेलापन तो खाने को आता है। काश ! मैं मर ही जाती···"

—"मां !"

—"बेटे···"

—"मां, मैं सब समझ गया।"

—"मगर समझने-भर से होता ही क्या है···"

सिरिल फिर खो गया। कुछ विचार कर उसने कहा—"मां, बीच

में एक बात आ खटकती है। मां-बेटे का यह पवित्र रिश्ता, यह पाक सम्बन्ध केवल एक ही कारण से अधिकतर टूटा करता है, और वह है पत्नी यानी बहू। मैं नहीं चाहता कि विवाह के बाद कोई ऐसी-वैसी बात उठ जाये और···''

—''मगर सभी झगड़े तो पत्नी के कारण नहीं होते।''

—''अधिकांश तो होते हैं।''

—''वह सिर्फ इस लिए कि पत्नी बुरी और अयोग्य होती है।''

सिरिल कांप गया !—सन्नो भी तो बुरी है···गन्दी है, समाज की नजरों में उसका कोई मूल्य नहीं। अब वह मां से क्या कहे। कैसे कहे कि वह केवल सन्नो को···और मां बुरी बहू को स्थान देकर, मां-बेटे के पवित्र सम्बन्ध पर कोई कलंक कैसे लगने देगी ?···नहीं, एक गिरी हुई वेश्या को मां किसी भी कीमत पर अपनी बहू बनाने पर राजी नहीं होंगीं।

मां उसे देखती रहीं। सिरिल ने नज़रें झुका लीं। सदा की तरह वह आज फिर हार गया। मां उसकी इन झुकी आंखों से परिचित हैं··· उन्होंने समझ लिया, सिरिल तैयार होने का नहीं। अब वह कहती भी तो क्या ! जब बेटा ही···

चाय की खाली प्याली में अपने को ढूंढती-सी मां सीढ़ियां चढ़ने लगीं।

उन्नीस

रात, जब वे सोने जा रहे थे···

इवा ने बात छेड़ी—''रेजी, अब हमारी फिक्र तो बढ़नी चाहिए।''

—''क्यों ?''—रेजी ने पूछा।

—''इसलिए कि अब हमारा परिवार बढ़ गया है।''

रेजी ने स्वीकृति में सिर हिलाया।

—"अच्छा, मैं तो पढ़ी-लिखी हूं। यदि कमाऊं तो कितने तक की नौकरी मिल सकती है?"

—"यही कोई दो सौ की तो अवश्य।" —अनमने ढंग से उसने कहा।

—"मान लो दो सौ, तो इस हिसाब से एक साल में कितने हुए?

—"चौबीस सौ।"

दोनों चुप रहे।

—"बुरा न मानो तो एक बात कहूं।"

—"कहो न!"

—"मेरा तो विचार है, अब मुझे भी काम करना चाहिए।"

—"ठीक तो है।"—और रेजी ने करवट बदल ली।

इवा लेटी-लेटी सोचती रही—रेजी कितना अधिक बदल गया है। जब वे नये-नये आए थे, तो इसी रेजी ने कहा था—'तुम और नौकरी! तुम काम करोगी और मैं रोटी···तुम सड़कों-सड़कों फिरोगी और मैं··· नहीं-नहीं, नारी पुरुष की इज्जत हुआ करती है। प्रत्येक व्यक्ति किसी-न-किसी नारी के पवित्र आंचल में अपनी लाज बांध देता है, फिर यह उस नारी पर निर्भर करता है कि वह उसे सम्भाल कर रखे अथवा सड़कों की धूल में नीलाम कर दे।'···उसकी आंखों में याद के मोटे-मोटे आंसू उतर आये। वह तब तक चुपके-चुपके सिसकती रही, जब तक नींद ने उसे अपनी बांहों में नहीं भर लिया।

□

इवा को नौकरी मिल गयी। वह नित्य सात बजे निकल जाती। उस की गैरहाजिरी में रेजी ही बसन्तो को सम्भालता। रात दस बजे के करीब वह लौटती। अब वह कुछ खुश-खुश रहने लगी थी, शायद काम म मन ज्यादा लगता था।···

फिर एक दिन उसने कहा—"रेजी, एक ट्यूशन और मिल गई है। यदि कहो, तो मैं उसे भी पढ़ा दिया करूं।"

सहज भाव से रेजी ने 'हां' कह दिया।

वह फिर बोली––"लेकिन, अब पढ़ाते-पढ़ाते ग्यारह बज जायेंगे। यहां से मैं कितनी दूर जाती हूं, यह तो तुम जानते ही हो। फिर 'लास्ट ट्रेन' और 'बस' भी निकल जायेगी। आ सकना सम्भव न हो सकेगा। कहो तो उसी लड़की के यहां रह जाऊं। मेरी छात्रा बड़ी ही भली है।"

रेजी कुछ कहने ही जा रहा था कि इवा ने टोका—"जानती हूं, तुम कहोगे बसन्तो तंग करेगा। परन्तु इसे मैं हन्ना के पास छोड़ जाऊंगी। और आजकल तो उससे बसन्तो काफी हिल गया है। जानते हो रेजी, हन्ना बहुत ही अच्छी लड़की है।"

रेजी ने कोई उत्तर नहीं दिया।

—"बोलो न !"—वह अधिक-से-अधिक स्नेह उड़ेल कर बोली।

इस बार रेजी ने मुसकरा कर कहा—"जैसी तुम्हारी इच्छा !"

फिर दोनों के दोनों चुप रहे। रेजी कुछ सोच रहा था। एकाएक उस ने प्रश्न किया—"इवा, कितनी लड़कियां हैं ?"

—"पांच।"—इवा ने शीघ्रता में उत्तर दे दिया।

—"नाम ?"

अब इवा को खुलना था। वह उठी। रेजी के बालों में अपनी उंगलियां उलझा कर उसने हंसकर कहा—"क्यों इरादा तो नेक है ? पहले नाम, फिर धाम···पहुंचने का विचार है ?"

—"धत् ! ···तुम तो यों ही शक करती हो।"

—"सन्देह और तुम पर ? तौबा करो···हां, इतना अवश्य बता सकती हूं कि पांचों काफी अच्छी है !"

दोनों खिलखिला कर हंस पड़े।···

बीस

कल रात फिर छापा पड़ा।

इसके पहले भी कई बार छापे पड़ चुके थे।

जब से छापे पड़ने लगे हैं···वेश्याओं के जीवन में घुन लगने शुरू हो गये हैं। और ये घुन वेश्याओं से अधिक उनके संरक्षकों को खाने लगे हैं।

दुलहन बाज़ार वालों ने एक विशेष सभा बुलायी, इसमें सिरिल और श्रीकान्त को भी आमंत्रित किया। हनीफ मियां ने कहा—"पुलिस इन बच्चियों को जब चाहती है, कभी जायज़ तो कभी नाजायज तौर पर छापे के नाम पर बन्द कर देती है। जिस इन्सपेक्टर और दरोगा को हम खुश नहीं करते, वह इसी शक्ल में बदला लेता है···अब हमें जागना चाहिये। अगर अब भी नहीं जागे तो फिर छापे पड़ेंगे···और, खुदा जाने, कल क्या होगा!"

श्रीकान्त ने कहा—"मैं समझता हूं, पुलिस इस गन्दगी को मिटाने में सफल होगी और समाज का यह धब्बा इस तरह से मिट जायेगा।"

एक वेश्या ने एकदम से प्रतिवाद किया—"नहीं, यह मिटेगा नहीं। बल्कि समाज के जिस्म पर कहीं और से यह घाव फूट निकलेगा। पुलिस हमें पकड़ कर ले जायेगी, किसी "केयर-होम" में बन्द कर देगी। मगर आप लोगों ने कभी सोचा है, इन छोटे-छोटे बच्चों का क्या होगा? हमारे जाने के बाद, इन बूढ़ी और टूटी हुई औरतों का क्या होगा? उन बूढ़ों का क्या होगा जो जिन्दगी पर बोझ बन गये हैं? और उन लोगों का क्या होगा हुजूर, जो इसी समाज में अपाहिज पैदा हुए हैं···? अगर किसी बच्चे से उसकी मां छीन ली जाये तो वह भीख मांगेगा, चोरी करेगा या किसी फुटपाथ पर भूख-प्यास से तड़पकर दम तोड़ देगा···हमें बन्द करने के पहले, सरकार को इन लोगों के बारे में भी सोचना होगा।"

आने वाले भय से कइयों के चेहरे पीले पड़ गये। कुछ लोगों में खुसुर-पुसुर शुरू हो गयी। लेकिन यह तय था, हर चेहरा, आने वाले भय से आतंकित था।

तभी श्रीकान्त ने कहा—"मैं तो एक ही बात जानता हूं, कि अगर किसी पेड़ को खूबसूरत बनाना है, तो एक बार कुल्हाड़ी चलाने की बजाय उसे सलीके से छांटने की जरूरत होती है···और मेरी समझ से, सरकार भी शायद यही चाहती है, कि हर काम तरीके से हो। आप लोगों को चाहिये कि किसी को दोष न देकर अपना स्तर ऊंचा उठायें।"

बीच में सन्नो बोल उठी—"यह सब कैसे होगा ? हमारा नाचना और गाना तो बुरा समझा जाता है।"

इस बार सिरिल ने श्रीकान्त की तरफ इशारा कर कहा—"मेरा विचार है कि इस सम्बन्ध में श्रीकान्त हम लोगों से कुछ अधिक जानता है। जब पहली बार छापा पड़ा था, तभी उसने मुझसे एक कानून के बारे में कहा था। अच्छा यही होगा, कि श्रीकान्त ही कोई उपाय करे।"

सभी की आंखें श्रीकान्त पर टिक गयीं।

श्रीकान्त ने कहना शुरू किया—"नाचना-गाना बुरा नहीं। मैंने 'इम्मॉरल ट्रॉफिक इन विमेन एण्ड गर्ल्स एक्ट 1956' को पढ़ा है। उसमें ऐसी कोई बात नहीं। एक बार त्रिचूर में भूतपूर्व केन्द्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्री डा० बी० वी० केलकर ने कहा था—'इससे पहले कि हम कला को नये रूपों में संजोये, हमें अपनी कला के परम्परागत रूपों को लोकप्रिय बनाने और सीखने की कोशिश करनी चाहिये।'...और हमारे प्रधान मंत्री श्री जवाहरलालजी ने भी कहा था, 'कथकली भारत की, खासकर दक्षिण भारत की एक महान् कला है, हमें इसको बनाये रखने और विकसित करने की कोशिश करनी चाहिये...' आप लोग अगर चाहें तो भारत की इस महान् कला को और आगे बढ़ा सकती हैं।"

—"वह कैसे ?"

श्रीकान्त ने कुछ सोचते हुए कहा—"सरकार जो रास्ता बनाती है, उस पर चलकर। सरकार यह चाहती है, कि आप संगीत और नृत्य के स्तर को ऊंचा उठायें। कला की साधना करें। कानून की धारा आठ के अनुसार श्रृंगार करके, बरामदे या बालकनी में खड़े होकर भद्दे इशारे नहीं करें। दरवाज़ों पर पर्दे डालकर भीतर बैठें। शुरू-शुरू में दिक्कत तो होगी। मगर एक दिन संगीत और नृत्य के सही पारखी आपके पास आयेंगे...आप जिस्म का सौदा बन्द कर दें। भगवान ने आप लोगों को कला दी है, उससे रोटी पैदा करें। सितारा देवी, किशन महाराज, गोदाई महाराज, बिस्मिल्ला खां, शोभा गुर्टू और लता मंगेशकर तक अपने फन के सहारे जी रही हैं...आप भी फन बेचिये...मैं तो यह चाहूंगा, कि 'गायिका-रक्षा-समिति' बनायी जाये। इसके अन्तर्गत एक शिक्षा-केन्द्र खोला

जाये, जिसमें नृत्य-संगीत की शिक्षा के साथ-साथ कढ़ाई-बुनाई सिलाई-कताई की भी शिक्षा दी जाये।"

—"हां, यह तो हो सकता है।"—वेश्याओं की आंखों में उम्मीद की किरणें उभरी।

फिर श्रीकान्त के प्रयास से 'गायिका-रक्षा-समिति' का गठन हुआ। वहीं के कुछ बुज़ुर्ग कलाकारों की मदद से 'परीक्षा-समिति' बनी। वेश्याओं की परीक्षा लेकर, उन्हें बोर्ड प्रदान किये गये। रोज सुबह दस बजे स्कूल लगने लगा। वेश्याएं नृत्य-संगीत की शिक्षा के साथ-साथ, कताई-बुनाई-सिलाई भी सीखने लगीं। सारे शहर में दुलहन बाज़ार के "शिक्षा-केन्द्र" की चर्चा होने लगी। हर कोठे पर तख्ती लग गयी—"शराब़ पीना मना है' 'जिस्म बेचना पाप है', 'भ्रष्टाचार न फैलायें'···

□

अब छापे पड़ने बन्द हो गये थे। जिस भय से समिति की रचना हुई थी, वह भय खत्म हो गया···और श्रीकान्त ने अनुभव किया, कि धीरे-धीरे स्कूल के नियमों का उल्लंघन होने लगा है। लड़कियां, दस के बजाय ग्यारह बजे आतीं···कभी नहीं भी आतीं। जब वह टोकता, उत्तर में उन के सिर झुक जाते।

एक दिन, देर से आने वाली एक लड़की पर वह बरस पड़ा—"अगर आप उठना नहीं चाहतीं हैं, तो कल से स्कूल आना बन्द कर दीजिये।"

लड़की ने उत्तर में अपनी पीठ दिखायी···बेंत के दाग···जले के निशान···और वह सिसकने लगी—"मुझे स्कूल आने से मना मत कीजिये। मैं पढ़ना चाहती हूं, लेकिन मेरा भाई मुझे मारता है। स्कूल आने से रोकता है।"

—"क्यों?"

—"क्योंकि दिन में भी रईस लोग आते हैं और मेरे यहां आने से कमाई मारी जाती है। जब-जब मैं यहां आने की जिद करती हूं, मुझे कोड़े लगते हैं, मेरा भाई मुझे सींक गर्म कर दागता है···लेकिन मैं पढ़ना चाहती हूं, इस गन्दगी से नजात चाहती हूं···मुझे स्कूल आने से मत

रोकिये।"—और वह सिर झुकाकर रोने लगी।

श्रीकान्त को लगा, जैसे हर झुका सिर कह रहा है—हमारा बाप हमें मारता है··· हमारा भाई हमें सींक गर्म कर दागता है···हमारा शौहर हमें दूसरे के साथ सोने पर मजबूर करता है।

□

एक दिन श्रीकान्त को सूचना मिली, कि सलमा ने जहर खा लिया है। वह दौड़ा हुआ अस्पताल पहुंचा। सलमा बच गयी थी और पुलिस को अपनी रिपोर्ट लिखवा रही थी—"खता मुआफ हो सरकार, गलती तो इन्सान से ही होती है। गर पता होता, कि दवा भी जहर बन जाती है तो इतना सारा क्यों पी जाती।"

लेकिन एकान्त में उसी सलमा ने कहा—"श्रीकान्त बाबू, हम तो उठना चाहती हैं, लेकिन यह मर्द की जात···खुदा इनका भला करे, इसने हमें बार-बार रोका है। अगर हम पेशा बन्दकर दें, तो ये पहले दिन ब्लैक से टिकट, खरीद कर बालकोनी में सिनेमा कैसे देखेंगे ? सिलक के कुरते कैसे पहनेंगे ? बुलबुलें कैसे लड़ायी जायेंगी ? शतरंज की बाजी पर रुपयों की शर्त कैसे लगेगी ?"

—"मगर तुम्हारे साथ क्या हुआ था सलमा ?"

—"जाने भी दीजिए श्रीकान्त बाबू, मेरे साथ जो हुआ सो हुआ, आप इन लोगों से बचकर रहिए। ये हमें अंडा देने वाली मुर्गी समझते हैं। जब इन्हें डर था, कि पुलिस हमें पकड़कर ले जायेगी तो इन लोगों ने आपसे 'गायिका-रक्षा-समिति' बनाने की मिन्नत की। मगर अब ये डर जाता रहा, और ये लोग आपसे नफरत करते हैं···"

—"मैं पूछ रहा हूं, तुम्हारे साथ क्या हुआ था सलमा ?"—श्रीकांत ने कड़े शब्दों में पूछा।

—"होता क्या ! मैंने अल्लाह को गवाह मानकर आपके कागजात पर अंगूठे लगाये थे, कि अस्मत-फरोशी छोड़कर नेक जिन्दगी बिताऊंगी। लेकिन मेरा वालिद मुझसे कहता—अभी कमा ले सलमा, यही कमाने का मौका है। मौका तो मछली है, अगर एक बार हाथ से छूटकर पानी में गिर

गया तो दोबारा हाथ नहीं आयेगा।"

—"फिर !"

—"पहले आप वादा करें कि बात आप तक ही रहेगी।"

—"ऐसा ही समझो।"

सलमा ने गहरी सांस ली—"कल रात मेरे ही बाप ने मुझे धोखे से शराब पिलायी और नशे की हालत में जाने कितनों ने···"—और वह फफककर रोने लगी—"अब अगर मैंने जानबूझकर जहर खाया, तो दुनिया मुझे मरने क्यों नहीं देती? मेरा बाप मुझे मरने नहीं देगा। उसे बेटी नहीं, सोने का अंडा देने वाली मुर्गी चाहिए।"—वह फूट-फूटकर रोने लगी।

श्रीकान्त के चेहरे पर दुःख और घृणा के एक साथ कई भाव आये—"लेकिन सलमा, तुमने तो पुलिस को कुछ और ही बयान दिया···"

सलमा ने रोते-रोते अपना सिर उठाया—"तो क्या मैं भी गिर जाती? मेरा बाप तो मर्द है और उसने हर मर्द की तरह ही किया। लेकिन मैं उससे बदला कैसे लेती···मैं तो उसकी बेटी हूं न! अगर वह बाप का फर्ज भूल गया, तो क्या मैं भी···।"—और सलमा एक बच्ची की तरह फफककर रोने लगी।

श्रीकान्त ने धीरे से उसके कंधे पर हाथ रखा—"मत रो सलमा, मैं हूं न!"

इक्की·

किसी पत्थर की तरह सन्नो गुमसुम बैठी थी। ऐसा ल

मुर्दा हो। हाथों की चूड़ियां गूंगी होकर उतर चुकी थीं

को लुभाने वाला आकर्षण, ढलते चांद की तरह उ

गया था। और अब जो कुछ भी वहां था ुछ कहना चाहकर भी कह नहीं

तभी सिरिल भीतर आ गया। ह बात क्या है, एकदम चुप हो गई!"

बैठी थी, जैसे उसे कुछ पता ही नहीं था। सिरिल ने उसके सिर पर धीरे से हाथ रखा। जरा-सा स्पर्श पाकर सन्नों फट पड़ी। सिरिल उसे समझाता रहा। फिर उसने पूछा —"कब आयी, वहां से ?"

—"बस घण्टा-भर हुआ होगा।"—और उसकी आंखें भर आयीं।

—"रो मत सन्नो···औरत तो मर्द की आत्मा हुआ करती है। तुम्हें क्या पता, जब नारी आंसू बहाती है, तो पुरुष को उसकी आत्मा से लहू टपकता नजर आता है। वह अपनी रूह के दर्द को सह नहीं सकता। यही वजह है, कि मर्द हमेशा-हमेशा औरत के आंसुओं से हार जाता है। दर-असल, वह औरत के आंसू से नहीं हारता, वह तो अपनी रूह अपनी आत्मा से हारता है।"···

—"क्यों नहीं रोऊं, आखिर अब बचा ही क्या है ? जिसके लिए गिरी···जिसकी वजह से यह जिल्लत सही···वही···।"—और वह पहले की तरह दर्दीली हो गयी।

—"परन्तु सन्नो···जुर्म तो···"

—"हां-हां, जुर्म था·· तभी तो मां को अदालत ने मौत की सजा दी है। एक 'शरीफ' पुलिस अफसर का उन्होंने खून किया था।···मगर जिन लोगों ने जबरन मेरी इज्जत का खून किया···मेरी अस्मत लूटी··· उनको शरीफ का खिताब मिला। क्या यही इन्साफ है ? यही दुनिया का रिवाज है ?"—उसकी हिचकी बंध गई।

सिरिल ने उसे बांहों में भर लिया—"मत रो सन्नो, मत रो। मैं इस नरक से निकाल···"

—"निकाल लोगे···मगर कब ?"

ज, —"बस समय की प्रतीक्षा है।"

—"मगर सिरिल, वक्त किसी का इन्तजार नहीं करता। जो उसके

ने कड़े शब्दों, वह हमेशा के लिए पीछे छूट जाता है।"

—"होता क्या, तो, ऐसा मत कहो। बस मैं मां से डरता हूं। हिम्मत

पर अंगूठे लगाये थे, कि अ कदम उठाया जाये, जिससे उनके हृदय पर···"

लेकिन मेरा वालिद मुझसे कह आह भरी !

-मौका है। मौका तो मछली है, अगर ी। नौरी बाहर जाकर पत्र ले आयी।

सन्नो ने खत खोला। अब वह पढ़ने योग्य हो गई थी। परन्तु उसके आंसू उसे पढ़ने नहीं दे रहे थे। उसने कांपते हाथों से सिरिल को पत्र बढ़ा दिया—"तुम्हीं जरा पढ़ दो न !"

सिरिल खत देखते ही कांप गया। उसने जल्दी-जल्दी पढ़ डाला।

—"किसकी चिट्ठी है ?"

—"इवा की।"

—"इवा की ?"

—"हां !"—उसका स्वर टूट-सा गया।

सन्नो, सिरिल के निकट खिसक आई—"क्या लिखा है ?"

—"क···कुछ नहीं।"

—"कुछ नहीं कैसे, तुम मुझसे छिपा रहे हो। तुम्हें मेरी कसम···"

सिरिल ने कुछ सोचकर कहा—"देखो, वादा करो कि मां से इसकी चर्चा नहीं करोगी।"

"अच्छा, वादा करती हूं।"

सिरिल ने दर्दीली आवाज में कहा—"तो सुनो, इवा लिखती है कि उसे टी० बी० हो गयी है। वह बसन्तो और रेजी के भविष्य के लिये बहुत कुछ कर रही है और उसे विश्वास है कि मरने के पूर्व वह उनके लिये कोई न-कोई जीने का आधार छोड़ जायेगी। परन्तु उसने मुझे शीघ्र ही बुलाया है। और उसने खत तुम्हें इस कारण लिखा है, कि मां के हाथों में पत्र नहीं पड़े और तुम इसकी सूचना मुझे दे दो। यदि मां यह खबर सुनेंगी तो बहुत दुःखी होंगी।"

सन्नो सन्न् रह गई ! सिरिल के चेहरे पर अनेकानेक भाव आये और खो गये।

—"कहां है ?"—सन्नो ने पूछा।

—"बम्बई। और में कल ही जाऊंगा···"

—"कितने दिन लग जायेंगे ?"

—"कम-से-कम एक सप्ताह तो जरूर ही।"

सन्नो शान्त-गम्भीर हो गई। वह कुछ कहना चाहकर भी कह नहीं पा रही थी। सिरिल ने पूछा—"क्यों, बात क्या है, एकदम चुप हो गई!"

—"नहीं, यही सोच रही थी ··तुम्हारे जाने के बाद···"

—"बाद क्या, मेरे रहते चिन्ता मत करो।···मैं तो बस वक्त का ही इन्तजार कर रहा हूं।"

जब वह चलने को हुआ तो सन्नो ने पूछा—"जा रहे हो ?"

—"हां, कुछ तैयारी तो करनी होगी।"

सिरिल अपने घर लौट आया, उसे जाने की व्यवस्था जो करनी थी।

बाईस

इवा की सेहत दिनों-दिन गिरती ही गयी। जब-तब खून आ जाता काफी मात्रा में। फिर भी नियमित रूप से दो सौ रुपये घर आते रहे। अब मुन्ना के लिए फल भी आने लगे। रेजी के पास कभी ढंग के कपड़े नहीं थे, अब हो गये हैं। इधर छः महीने की हर रात इवा ने अपनी छात्रा के यहां व्यतीत की थी। सभी खुश थे—जैसे खुश रहा जाता है।

उस दिन शनिवार था। रेजी घर लौट आया—आधी छुट्टी। इवा किसी आवश्यक कार्य से उसके आने के बाद ही निकल गयी। बसन्तो की जिम्मेदारी रेजी पर थी। मां के अभाव में, पिता ही तो उसके लिए सब कुछ हुआ करता है।

शाम करीब छः बजे इवा लौट कर आयी। घर भीतर से बन्द था। उसने कोने की छोटी खिड़की से झांककर देखा—हन्ना लेटी थी। बसन्तो उससे चिपक कर सोया था। और रेजी, वह तो धीरे-धीरे उसके बालों में उंगलियां फिरा रहा था। दोनों बहुत ही दबी आवाज में बातें कर रहे थे, जिनका इवा तक पहुंच सकना असम्भव था। उसे इस प्रकार के दृश्य से न नफरत ही हुई और न दुःख ही। परन्तु उसने ऐसी स्थिति में दोनों को टोकना उचित नहीं समझा और वह सामने दरवाजे की ओर बढ़ गई। ···एक पल रुकी, फिर उसने धीरे से दस्तक दी। उत्तर के अभाव में उसने यही प्रक्रिया फिर दुहराई।

इस बार रेजी ने द्वार खोलकर उसे देखा···ठगा-ठगा-सा वह खड़ा रह गया।···इवा कांपती हुई भीतर आई। अब तक हन्ना भी उठ खड़ी हुई थी। इवा ने हाथ की पुस्तक तकिए के नीचे रख कर, खुद को विस्तर पर गिरने से अपने को सम्भाला। परन्तु वह सफल न हो सकी। ढेर-सारा लहू बिस्तर पर ही छितर गया।

रेजी को जैसे सांप सूंघ गया। उसने कांपते हाथों से इवा को सहारा दिया। डाक्टर के आने तक वह बेहोश रही। डाक्टर ने स्पष्ट शब्दों में कहा—"टी० वी० का लास्ट-स्टेज। ये तो इनकी इच्छा शक्ति कहिए कि ऐसी हालत में भी यह घूमती-फिरती रहीं।"

—"क्या कह रहे हैं आप ?"

—"ठीक ही तो कह रहा हूं। आज से बहुत पहले ही मैंने इन्हें इस बीमारी से वाकिफ करा दिया था, मगर इन्होंने तो कोई···।"

—"समझ गया डाक्टर, मैं सब समझ गया।"—रेजी का स्वर भीग गया।

नाउम्मीदी का पैगाम देकर डाक्टर साहब चले गये। सिसकियों में डूबा रेजी होश की प्रतीक्षा करने लगा। जब इवा होश में आयी तो शिकायत के लहजे में उसने पूछा—"इवा, तुमने मुझसे छिपाया···"

—"क्या ?"—टूटती-सी आवाज उठी।

—"यही रोग।"

—"कौन-सा रोग ? मैं तो स्वयं···नहीं जानती।"—वह फीकी हंसी हंसी।

—"इवा, तुम पर्दा डालने का प्रयास कर रही हो।"

बात बदलने के इरादे से इवा ने कहा—"हन्ना, जरा बसन्तो को तो मेरे पास लाओ न !"

तभी घड़ी ने सात की घण्टी दी—टन···टन···टन···इवा चौंक गई। उसके अधरों पर एक दर्द भरी मुसकान उभर आयी। उसने कहा—"हन्ना, सात बज गये, यही तो···मेरे जाने का···समय है न···अब मैं···जाना चाहती···बसन्तो को तुम सम्भालना···यह तो बड़ा···हो गया है। तकलीफ नहीं···देगा यह।"

--"इवा, क्या हो गया है तुम्हें ?"—रेजी की आंखों में आंसू आ गये। लड़खड़ाती आवाज में इवा ने कहा—"देखो, घड़ी ने··· विदाई दे दी। अब तुम भी···। मैं भला तुमसे क्या छिपाऊंगी ! जब हम अपनी प्यारी धरती···छोड़कर चले थे, तो एक-दूसरे पर विश्वास कर।···आज मैं अकेली जाने वाली हूं···फिर भी तुम पर उतना ही विश्वास करती हूं। हां, जीवन में एक अपराध···क्षमा कर दोगे···"—वह खांसने लगी।

रेजी ने सहलाते हुए कहा—"एक क्या, तुम्हारे सारे अपराध क्षम्य हैं इवा···तुमने रोग छिपाया, इलाज नहीं कराया।"—रेजी का स्वर टूटने लगा।

—"रेजी, मुझे बहुत पहले मालूम हो गया था कि मैं ज्यादा नहीं चलूंगी।"—उसकी आंखें नम हो गयीं। रेजी के बालों में हाथ की उंगलियां डालकर वह बोली—"मैं एक साल की मेहमान, नौकरी भी करती तो तुम्हारे हिसाब से केवल···केवल चौबीस सौ ही कमा पाती। इससे तुम्हारा और बसन्तो का···कुछ नहीं होता।"—वह खांसने लगी।

रेजी भीगी-भीगी पलकों से उसे निहार रहा था। खांसते-खांसते उस ने कहा—"तो रेजी,···कभी मैंने कहा था कि नारी का दूसरा···दूसरा नाम सहारा है। औरत तो दीवार होती है। छत का सम्पूर्ण बोझ वही उठाती है।···मैंने एक पाप किया···तुमसे झूठ···बोली···क्योंकि मुझे छत···गिरने का भय था।"—वह हांफने लगी। फिर थोड़ा-सा खून आ गया।

बसन्तो उसके पास ही था। रेजी ने कपड़े से रक्त पोंछ दिया। हन्ना बुत की तरह खड़ी थी। उसकी सारी चंचलता, जाने कौन डस गया था ? इवा शान्त होकर बोली—"मैं झूठ बोली। मैं रात पढ़ाने नहीं···जाती थी। बल्कि, हर रात ऐसी जगह जाती थी, जहां एक रात में ज्यादा-से-ज्यादा कमाने की कोशिश की जाती है, कुछ भी देकर।"—और वह रो पड़ी।

रेजी के सामने जैसे कोई सत्य निर्वसन होकर खड़ा हो गया। आज वह हाथ छूटे बालक की तरह राह खोजने लगा।

—"घबड़ाओ मत रेजी !···उस दिन जब मैं अपना शहर छोड़

कर चली थी···मैंने कहा था, कि प्रत्येक पुरुष को बाह्य नारी का नहीं··· तो कम-से-कम उसके अन्दर छिपी औरत का विश्वास करना ही चाहिए।" —फिर खून आने लगा। वह उसी क्रम से बोली—"नारी जब किसी भी पुरुष के प्रति कमजोरी का अनुभव करती है और वह आदमी उसे एक पल का भी सहारा देकर चुकाता है···"—खांसते-खांसते उसने तकिये से पासबुक निकालकर रेजी को देकर कहा—"रेजी, यह मेरी साधना है···। इसमें तुम तीनों का भविष यहै।···इसे सम्भालना।···और हां, मैंने कहा था न कि अगर मैं तुम्हें त्याग भी दूं···तो तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ेगा। तुम पुरुष हो···परन्तु अपरिचित स्थान में···मुझे केवल तुम्हारा ही सहारा।"···उसे जोरों की खांसी उठी। बसन्तो को छाती से लगा कर वह रो पड़ी। उसने अपनी पकड़ को और अधिक मजबूत किया, मगर हाथ ढीले होते गये और बसन्तो छूटता गया।

हन्ना चीख पड़ी। रेजी बर्फ की तरह वहीं जम गया। उसके हाथों में वही 'पास-बुक' 'जसमें इवा की अपनी होकर भी पराई रातों की कमाई···आठ हजार रुपये दर्ज थे। आठ हजार रुपये—उसके भविष्य के लिये। रेजी को लगा—प्रत्येक दीवार के गिर जाने के पश्चात् छत भी तो गिर जाया करती है···परन्तु आज एक दीवार के गिर जाने के बाद भी छत ज्यों-की-त्यों खड़ी थी···बरकरार! पहले से भी ज्यादा मजबूत और ठोस!

तेईस

पांच दिनों के लम्बे सफर के बाद सिरिल बम्बई वी० टी० स्टेशन पहुंचा।···अभी वह स्टेशन से बाहर भी नहीं हो पाया कि उसके पास एक आदमी आया—साफ धुले कपड़े। उसने आते ही कहा—"सेठ, तुम बम्बई कूं याद किया। आज तो अपुन कूं सेवा करने का मौका आया। कईसा का सेठ, चलो नम्बर एक का कमरा देंगा।"

सिरिल ठगा-सा खड़ा रहा। उस आदमी ने फिर हकलाकर कहा "कईसा क्या सेठ, जी खुश होने का सेठ। मकान अच्छा लगे, जी मुआफिक देना। कईसा क्या, ऐसा कौन मांगता सेठ।"

तभी एक चश्माधारी सज्जन आ गये। आंख से उतारकर नाक तक ऐनक लाते हुए बोले—"सेठ, यह तो खाली-पीली बूम मारता। किसी का सुपारी बजाने (मरम्मत करना) को कहेंगा सेठ, एक मिनट में काम चोखा होंएगा।"

अपने शिकार को जाते देख पहले वाला बोला—"कईसा का सेठ, वी० टी० से सीधा जाने को···मेट्रो सिनेमा के सामने सेठ, जी खुश होंएगा। एइसा होटल! कोई भी होटल बम्बई में अपुन को दिखता नई सेठ। अरे कईसा क्या···अपुन निकलते टेम सामने मेट्रो, बांई बाजू क्राफेट-मार्केट दाई बाजू कटो तो मेरिन लाइन्स स्टेशन को गाड़ी मिलता सेठ। हमरा बात मानो तो सेठ, कईसा क्या···मेरिन-ड्राइव भी नगीज को पड़ता।"

सिरिल ने सब सुन-सुनाकर कहा—"भई, मैं जिसे जानता नहीं, उसके साथ जरा आना-जाना पसन्द नहीं करता।"

इस बार पहला वाला पुनः आगे को सरक आया—एइसा काहे बोलते रे सेठ, हम तो तुम कूं पहिले से चीन्हता है। अच्छा तुम कूं किधर को जाने का सेठ?"

सिरिल ने उत्तर दिया—"जाना तो है चिंचोली।"

"चिंचोली! हमरा मानो तो अपुन के साथ चलो। सेठ, घुमा-फिरा के तुमकूं पहुंचा देंगा।"—फिर उसने जेब से एक नोट बुक निकाली, जिस पर उसकी तस्वीर चिपकी थी। सिरिल को दिखाकर बोला—"कईसा क्या सेठ, अपुन का नम्बर देखो, फोटू देखो, ई काम में नाम चीन अपुन है। अपुन का बाप भी यही काम करता रहा सेठ।"

दूसरा दलाल अपनी ओर आकृष्ट कर उसे ले जाना चाहता था। पहले ने चेतावनी के रूप में कहा—"कइसा क्या रे सेठ, इ बम्बई है सेठ। लफड़े में पड़ जाएंगा, तो साल-दो-साल का बांदा हो जाएंगा।"

पीछा छुड़ाने के इरादे से सिरिल ने तुनककर कहा—"आप दोनों ही

जा सकते हैं। मुझे किसी की भी आवश्यकता नहीं। मैं कोई बच्चा नहीं हूं जो आप…" दोनों उसे घूरकर देखने लगे।

सिरिल स्टेशन के बाहर निकल गया। उसकी जाती छाया को देख कर दूसरा दलाल बोला "कइसा क्या रे, अपुन का मालपानी तो गया ! जाने को रोकता कौन, मगर इ आदमी तो तिकड़मबाज लगता।" फिर दोनों नये आने वाले शिकार की ओर बढ़ गये।

सिरिल ने वहीं 'इन्क्वारी' में चिंचोली जाने की बात पूछी। उसे बताया गया कि वह चर्च गेट से वहां के लिए गाड़ी पकड़ ले। उसने पहले तो कुछ सामान खरीदा…बच्चे के लिए खिलौने और इवा के लिए एक साड़ी। आज वह खुश था। एक अवधि के पश्चात् आज वह अपनी प्यारी बहन से मिलने जा रहा था।

चर्च-गेट से गाड़ी पकड़ वह मलाड के लिए रवाना हुआ। हर पांच मिनट पर छूटने वाली यह बिजली की गाड़ियां भी खूब थीं। उसे मलाड होते हुए चिंचोली जाना था।…

सिरिल मलाड उतरकर, बताये पते पर…बताये इशारे और नक्शे पर आगे को बढ़ा। थोड़ी ही देर के बाद वह एक ऐसे घर के सामने खड़ा था, जिसका नक्शा इवा के लिखे शब्दों में हू-बहू मिलता था।

एक छोटा-सा मकान…सड़ी-सी हवा ! उसका दम घुटने को हुआ। उसने आवाज दी—"कोई है ?"

—"कौन साहब हैं ?"—आवाज भीतर से आयी।

—"क्या यह रेजी साहब का मकान है ?"

इस बार उत्तर के बजाय आदमी के आने की आहट हुई। और दूसरे ही क्षण रेजी सामने खड़ा था।

—"आप ?"—वह चौंक गया। फिर उसने कहा—"आइये भीतर।"

सिरिल भीतर गया। इधर-उधर सामान…ऐसा लगा, कोई घर की चिंता ही नहीं करता। सिरिल ने सोचा—जब घरवाली ही बीमार हो तो घर की ऐसी हालत होने में शंका ही क्या…पास पड़ी कुर्सी पर बैठते ही उसकी नजर एक बच्चे पर गयी। एक छोटा-सा, प्यारा-सा बच्चा

जमीन पर खेल रहा था। इवा का बच्चा···और सिरिल ने उठकर उसे अंक में भर लिया। फिर देखते-ही-देखते ढेर सारे खिलौने उसके सामने बिछ गये।

बच्चे को गोद में लिए ही उसने पूछा—"क्यों रेजी, इवा कहां है ?"

···मौन छाया रहा।

—"बोलो न, एक तो छिप कर आये और अब···समझा, डर रही होगी। अरे भई, डरने की कोई बात नहीं···मैंने तो कब का उसे माफ कर दिया।"

···चुप्पी !

—"अरे भई, मैं बिगड़ूंगा थोड़े ही···"

किसी प्रकार साहस कर रेजी ने कहा—"मगर वह तो···"

—"क्या हुआ उसे ?"

—"वह तो चल बसी भैया···रेजी का स्वर कांप गया।"

सिरिल को लगा, किसी बजनेवाले सितार के तारों को एक साथ ही किसी ने नोंच डाला हो···उसकी आंखें, जो दूसरों की मौत पर सदा ही हंसना जानती थीं, आज आप-से-आप भीग गयीं।

कुछ स्वस्थ होकर उसने कहा—"अच्छा रेजी, मैं बसन्तो को ले जाऊंगा। तुम्हें इसे सम्भालने में कष्ट होता होगा।"

···रेजी मौन रहा।

—"क्यों रेजी, ले जाऊं ? इसे इसकी नानी ने भी कहां देखा है !"

इस बार रेजी ने कहा—"भैया, इवा तो इसका प्रबन्ध···"

—"प्रबन्ध···?"

इतने में भीतर से हन्ना प्लेट में बसन्तो के लिए भोजन ले आयी। उसे देखते ही सिरिल की स्मृति में अतीत कांप गया। उसने कुछ समझते हुए कहा—"ओह ! ···मैं समझा।"—और चलने को हुआ।

—"भैया, आज तो आये ही हैं···खाना-वाना तो खाकर···"

—"नहीं रेजी, तकल्लुफ की कोई जरूरत नहीं ! —" और उसने कागज में लिपटी साड़ी हन्ना की तरफ बढ़ा कर कहा—"रेजी की पत्नी के

लिए ही लाया था···अब इस पर तुम्हारा ही अधिकार है।"—फिर हाथ हन्ना के सिर पर रखकर उसने कहा—"फूलो-फलो···मगर इज्जत अपनी आंचल से बांधे रखना।"

वसन्तो की ओर बढ़ते हुए उसके हाथ आप-से-आप रुक गये। उसने बसन्तो को एक नजर देखा और फिर वह घर से बाहर आ गया। रेजी उसके पीछे आया। सिरिल ने कहा—"रेजी, मेरी शुभ-कामनायें साथ हैं। पत्नी को प्रसन्न रखना, अब वही सब कुछ है।"—इतना कह कर वह तेजी से वहां से बढ़ गया।

□

सिरिल अजीव-अजीव खयालों में खोया हुआ जा रहा था। तभी उसकी नजर पादरी साहब पर गई। वह तेजी से उसकी तरफ आ रहे थे। उसने टोका—"पादरी साहब!"

—"सिरिल तुम···?" वे चौंक गये।

—"जी हां, मैं ही। परन्तु आप कहां जा रहे हैं?"

—"भई, एक जरूरी काम है।"

सिरिल मुसकराया। उसने व्यंग्य के अन्दाज में कहा—"हां जी, भला दामाद के यहां ससुर का काम न पड़े तो···"

पादरी साहब घबरा गये।

—"क्यों, बोलते क्यों नहीं···आवाज बैठ गयी है? रेजी तो कैथोलिक है ना! अरे हां, ये कैथोलिक दामाद कब से पसन्द आने लगे?"

पादरी साहब इधर-उधर देखने लगे।

—"इवा को शादी की इजाजत नहीं मिली, क्योंकि वह प्रोटेस्टेन्ट थी। मगर जनाब, आपकी पुत्री कौन कैथोलिक है! हां, धर्म भी तो बदलता है। उसके भी कानून बदलते हैं—मगर पादरी, पण्डित, मुल्लाओं की इच्छा पर।"

पादरी साहब आगे बढ़ने लगे।

—"रुकिए भी साहब, वहां तो बहुत उछाल कर आये थे, कि एक वेश्या को घर में घुसाना पाप है। गन्दी लड़की से घर गन्दा होता है।

घर से समाज।···परन्तु आपके यहां कौन बाई आती थी, कि आपकी सूपुत्री ने एक विवाहिता का पति ही हड़प लिया?"

—"सिरिल, जो जी में आता है, कहने की तुम्हारी आदत है। मगर कुछ समझने की भी कोशिश करो···"

—"सोचना-समझना क्या! दामाद तो रुचता ही होगा। इसीलिए कि वह कैथोलिक है और अब तो एक बच्चे का पिता भी, साथ-साथ विधुर···"

—"जो हुआ सो हुआ, परन्तु सभी बातों के दो पहलू हुआ करते हैं और हमें अब···"

—"दो पहलू? कोई पॉलिटिक्स है?"

—"यही समझो।"

—"धर्म में पॉलिटिक्स!"

—"जो जी में आये कह लो। मगर अब तो हमें ही रेजी, उसके बच्चे को देखना है।···उसके बच्चे की सन्तान का भविष्य बनाना है।··· यह हम प्रोटेस्टेन्ट नहीं करेंगे, तो वह हमारी जमात में आने से रहा।"

सिरिल की भौंहें तन गयीं। घृणा से उसका मुंह विकृत हो गया। उसने कड़वाहट से कहा—"ओह!···तो उस कैथोलिक को प्रोटेस्टेन्ट बनाने के लिए बेटी का सहारा लिया जा रहा है। वाह···इतिहास का तो पूरा ज्ञान है आपको—पुरुष की कमजोरी नारी है, आप भी खुलकर इसका लाभ उठाइये! कैथोलिक को प्रोटेस्टेन्ट बनाइये···गैर प्रोटेस्टेन्ट को अपनी जमात में मिलाकर अपनी शान को कायम कीजिये।"

—"हां सिरिल, इसमें अपने धर्म का लाभ है।"

—"लानत है आप पर, इससे धर्म का तो लाभ नहीं···हां आपका फायदा तो अवश्य है। इसी चापलूसी पर तो उस छोटे शहर के बजाय आपको बम्बई मुयस्सर है।···आपके इसी काम से तो प्रसन्न होकर स्वदेशी होकर भी विदेशी रंग में रंगे मिशनरी आपको 'विकार' और 'बिशप' बना देंगे।···अब भी आंखें खोलिये, वक्त है, देश और जाति के काम आइये···"

—"ओह, तो तुम अब कैथोलिकों के हिमायती बन गये हो!"—

पादरी साहब ने व्यंग्य किया।

सिरिल का मुंह कड़वा हो गया—"इस गलतफहमी में मत रहियेगा पादरी साहब।...उन कैथोलिकों की बुराई मैं देखता हूं और भलाई भी। मेरी यह आदत ही नहीं कि मैं सदा किसी की बुराई ही खोजता रहूं। दूध का दूध और पानी का पानी...जो आंखें प्रत्यक्ष रूप से देख पाती हैं, वे ही धन्य हैं। वे अपनी रोशनी के कारण ठीक कही जायेंगी अन्यथा आंखें होते हुए भी इन्सान अन्धा होता है, क्योंकि उसमें भलाई और बुराई में तमीज करने की क्षमता नहीं रहती।...और हां, आप हिमायत करने की जो बात कहते हैं, वह अक्षरश: असत्य और गलत है। इन कैथोलिकों ने भी बड़ा लम्बा हाथ फैला रखा है। ये अंग्रेजी स्कूल खोल कर पढ़ाते कम और पैसे ज्यादा बटोरते हैं। नाटक और ड्रामा—'कन्सर्ट' करते हैं। प्रत्येक बच्चे को तो ये मोटर पर बिठाकर स्कूल ले जाते हैं, मगर उन्हें घर वापस छोड़ने नहीं आते। फलत: अभिभावकों को विवश होकर टिकट खरीदने पड़ते हैं...बच्चे को लाना जो होता है। पादरी साहब, ये विदेशी अब भी हमें उसी प्रकार लूटते हैं। फर्क यही है, कि माध्यम बदल गया है। वे हमारे ही बच्चों का बहाना बनाकर, हमें बेवकूफ बनाते हैं।...अब भी धर्म और व्यापार में अन्तर समझिये और इन्सान को इन्सान के हाथों से लुटने से बचाइये। धन नहीं, मन को ऊंचा उठाइये।"

बिना उत्तर की अपेक्षा किये ही वह आगे को चल पड़ा। उसका सिर दर्द कर रहा था। आज पहली बार मौत पर होने वाले दु:ख का उसे अहसास हो रहा था। श्रीकान्त की पत्नी की मौत पर कहे शब्द आज उसे स्वयं ही झूठे प्रतीत हो रहे थे।

वहीं की एक दुकान पर उसने चाय की फरमाइश की। चाय उड़ेलते हुए दुकानदार ने पूछा—"पेशल या गुलाबी, सेठ?"

पेशल-गुलाबी के चक्कर में सिरिल कभी पड़ा नहीं था। वह चुप रहा। चायवाला उसे हैरानी से देखने लगा। बगल वाले ग्राहक ने उसे नया समझकर कहा—"पेशल से मतलब है चोरी के दूध की चाय और और गुलाबी से अर्थ है पाऊडर की चाय।"

सिरिल ने कहा—"पेशल ही बनाना भाई।"

चाय से उसे कुछ राहत मिली। फिर गाड़ी पकड़ कर वह शान्ता-क्रूज आया। वहीं से तो जुहू जाया जाता था। शायद, समुद्री हवा में गम गलत हो। और वह 'बस' के लिए बढ़ा। क्यू में लगे लोग खड़े थे। एक लम्बी कतार खड़ी थी। पहुंचते-पहुंचते 'बस' खुल गई। कण्डक्टर ने हाथ उठाया और खड़े लोग ज्यों-के-त्यों खड़े रहे। न कोई हो-हल्ला और न शिकायत ही।

सिरिल भी उसी पंक्ति में जाकर खड़ा हो गया। भारत की इस 'सिविल-सेन्स' से आज उसका माथा आप ही गर्व से उठ रहा था।···

चौबीस

'गायिका-रक्षा-समिति' दम तोड़ने लगी। इसी बीच एक निर्माता-लेखक-निर्देशक पधारे। वेश्या-वृत्ति-उन्मूलन जैसी गम्भीर समस्या पर फिल्म बना रहे थे। मन्त्री होने के नाते, उन्होंने श्रीकान्त को बुलवाया। दोनों में घण्टों बातें हुई। श्रीकान्त ने कहा—"मेरे विचार से यहां के मर्द ही असल अपराधी हैं। अगर किसी प्रकार उन पर काबू पा लिया जाये, तो बहुत कुछ हल निकल सकता है।"

—"मर्द ?" निर्माता साहब ने कहा—"मेरे विचार से तो सभी मर्द अपराधी हैं। आखिर वे ही तो वहां जाकर बुराई करते हैं, तवायफ तो नहीं आती !"

श्रीकान्त ने कहा—"हां साहब, कुछ हद तक इसे भी सही माना जा सकता है। लेकिन हमारी सरकार तो वेश्याओं पर छापे मारना चाहती है। उन लोगों पर यदि पाबन्दी लगा दी जाये, जो आते हैं, तो फिर कोठे आबाद कहां से होंगे ?"

—"सो कैसे ?"

—"निर्माता साहब, इसी संसार में कुछ जगहें हैं, जहां चकले अब आबाद नहीं। वहां वेश्याओं को छेड़ा नहीं गया। सी० आई० डी० की

गुप्त और एकदम सच्ची रिपोर्ट पर सूची बनायी गयी। बड़े-बड़े बोर्डों पर वेश्याओं के यहां जाने वालों के नाम लिखकर चौराहों पर टांग दिये गये। अब भला वे 'सज्जन' कैसे फिर उस गली में आते ? इस प्रकार मर्दों का एक लम्बा सिलसिला बन्द हो गया। जो बचे, उनके लिए थाने में लाइसेंस का प्रबन्ध हुआ। लाइसेंस लीजिए और वेश्यालय जाइये। अब भला कौन जाये थाना और लाइसेंस ले।…और एक दिन वह आया, जब चकले खाली हो गये। तवायफें सरकार के पैर पड़ने लगीं और फिर, उन्हें सुरक्षित-घर तथा अन्य स्थानों पर रखकर शिक्षा दी जाने लगी।"

निर्माता साहब ने कहा—"यह तो अच्छी राय है। इसे फिल्माया जा सकता है। लेकिन कोठे पर शराब आदि का बन्द होना भी जरूरी है।"

—"मैंने यह कोशिश की है। अब आगे-आगे देखिये ?" और फिर श्रीकान्त ने उन्हें धन्यवाद और बधाई दी—"आप सचमुच, इनके हमदर्द हैं। आपके इस कदम की चर्चा हमेशा रहेगी। और यकीन मानिये, इसके उन्मूलन में आपका भी सहयोग माना जायेगा।"

□

श्रीकान्त रात में, सिरिल की माताजी से मिलकर आ रहा था कि किसी ने आकर कहा—"बिसेसरी के यहां शराब चल रही है।"

—"शराब ?"…और श्रीकान्त धड़धड़ाता हुआ ऊपर चढ़ गया। पांव तले की जमीन खिसक गई। दिन में उपदेश देने वाले वही निर्माता थे और साथ में कोई इंस्पेक्टर। शराब की बदबू आलम पर छायी हुई थी। उसे देखते ही निर्माता साहब ने कहा—"आओ भाई, शामिल हो जाओ।"

श्रीकान्त चीख़ पड़ा—"शर्म नहीं आती आपको ? फिल्म में बुराई को हटाने का उपदेश देंगे, वही आप स्वयं कर रहे हैं।"

निर्माता साहब मुसकराये—"कभी आओ बम्बई तो असली जिन्दगी दिखाऊं। परदे पर दिखलायी गयी बातें परदे के लिए ही रहती हैं।"

—"बकवास बन्द कीजिये।"—श्रीकान्त के स्वर में कठोरता थी। लेकिन इंस्पेक्टर कब चुप रहने वाला था—"किसे पकड़ लाये ?"

कोठेवालों ने कहा—"हुजूर, यह तो 'गायिका-रक्षा-समिति' का मंत्री है। नाक में दम कर रखा है इसने। कमाने-खाने भी नहीं देता और गाहे-बगाहे इसी तरह ऊपर चढ़कर रईसों को बेइज्जत कर जाया करता है।"

—"तो धक्के मारकर निकाल दो। रक्षा-समिति ! अरे, हम रक्षा करने के लिये काफी हैं।"

इसके पहले कि लोग धक्के देते, बिसेसरी बीच में आ गई—"श्रीकान्त बाबू, आप चले जायें। हमें तो गिरना ही है, आप क्यों जिल्लत मोल लेते हैं। अब छापे का डर नहीं रहा, अब इस बाज़ार में आपकी कोई भी मदद नहीं करेगा, हमें गिर जाने दीजिये, अगर ईश्वर भी आ जाये, तो भी शायद हमारा इस जन्म में उद्धार नहीं होगा···"

□

अभी 'गायिका-रक्षा-समिति' में ताला लगे ज्यादा दिन भी नहीं गुजरे थे, कि एक रात, जब बाज़ार पूरी मस्ती में था, बाईं ओर से छापा पड़ा। जिस हालत में वेश्यायें थीं, जिसके साथ, पकड़ कर ट्रक में लाद दी गयीं।

सन्नो, सिरिल की अम्मा के पास बैठी थी। हो-हल्ला सुनकर जो नीचे आयी, तो पकड़ ली गयी। छोटे-छोटे बच्चे चीख मारकर रोने लगे। उसने लाख क़ैफियत दी, लेकिन उससे कहा गया—"शरीर का प्रदर्शन आप कर रही थीं।"

और फिर ट्रक थाने में जा लगा। जगह की कमी से उन्हें बरामदे पर रखा गया। और सुबह, सन्नो को लगा, वह बरामदा पाप के बोझ से दरक गया है। और तीन दिनों तक, सबके साथ सन्नो कचहरी लदकर जाती। लोगों की अपार भीड़ उन्हें देखती, हंसती···लेकिन वह कभी नहीं सोचती, कि अपने-आप पर हंस रही है। अपनी बच्ची पर ही हंस रही है। यह भीड़ भी बाज़ार गयी है···और शायद इनमें बहुत सारी उनकी ही बच्चियां हैं···।

शाम को, ट्रक पर लादकर वेश्यायें दूसरे थाने भेज दी जातीं। और सुबह, फिर ट्रक उन्हें वापस ले आता। ट्रक वही, वेश्यायें भी वही रहतीं···

लेकिन ड्राइवर बदल जाते, ले जाने वाले कर्मचारी बदल जाते और बदल जाता, जुल्म करने का ढंग।

एक दिन सबने सुना—सरकार उसे छोड़ देगी, जिसे पति जमानत लेकर छुड़ा ले जायेगा।···आशा की किरणें बिखर गयीं। सब एक-दूसरे से अपने-अपने घर वाले का गुण गातीं और एक-दूसरे को विश्वास दिलातीं, कि हम यहां से चली जायेंगी। उन्होंने हजार कसमें खायी हैं।···लेकिन सुबह, शाम में ढलने लगी और उम्मीद किसी मरी हुई बच्ची की तरह सर्द पड़ने लगी, तभी एक सिपाही आया, बोला, "सन्नो बाई, तुम्हारे पति ने जमानत ले ली है। जाकर मिल लो।"

सन्नो पर जैसे हजार-हजार खुशियां बरस गयीं। और जब वह कर्मचारी के पास जाने लगी तो वह चल नहीं पा रही थी, कितना अच्छा है सिरिल, आज सबके सामने जिल्लत की परवाह न कर, जमानत लेने आया।···और किसका आशिक आया ? बड़े-बड़े वादे तो किये होंगे, लेकिन बेइज्जती कौन उठाये जमानत लेकर ?···वह मन ही मन बुदबुदायी —'सिरिल, मेरे खुदा, मुझे तुम पर यकीन था!'

चंद बूंदें उभर आयीं आंखों में!

पच्चीस

एक लम्बी अवधि के बाद सिरिल अपनी जमीन पर पैर रख रहा था। अपनी जानी-पहचानी धरती। जाना-पचाना माहौल। एक के बाद एक सपने उभरने लगे···बच्चों की तरह मासूम सपने। युवतियों की तरह जवान सपने। लेकिन बेजुबान सपने! सपनों में चित्र अधिक होते हैं और बोली कम। जी तो करता है पेड़ के नीचे झड़े महुओं की तरह इन्हें बटोर लिया जाये। उड़ती तितलियों को कैद कर लिया जाये। लेकिन कभी-कभी इन ख्वाबों को पकड़ते वक्त लगता है, कि जुल्म किया जा रहा है। मिलन के ढेर सारे सपने, सफेद-सफेद पवित्र लहरों की तरह आकर मन

के कछार पर सिर टेकने लगे···।

अभी वह स्टूडियो से दूर ही था कि उसकी आंखें सन्नो के कोठे पर थम गईं। हर तरफ रोशनी। दीपकों की मुस्कुराहटों के साथ वह भी मुसकुराया···शायद कोई पर्व है।

परन्तु निकट आते ही, उसके कदम कांपने लगे। कांपते कदमों से वह स्टूडियो के भीतर दाखिल हुआ। सन्नो सीढ़ियां उतर रही थी और श्रीकान्त नीचे खड़ा था। सिरिल को देखते ही उसने उसे बांहों में भर लिया—"मैं कितना भाग्यवान हूं भाई, जो तुम ठीक समय पर आ गये। बस, मुझे तुम्हारी ही प्रतीक्षा थी। तुम्हारी गैर-हाज़री में विवाह तो कर लिया, मगर डोली कैसे उठती !"

—"श्रीकान्त तुम ?"

—"हां, मैं ! कभी तुमने ही तो कहा था कि इन्हें थोड़े से सहारे की जरूरत है, फिर तो ये स्वयं ही उठ जायेंगी। बस, इन्हें उठाने वाला चाहिये। राह दिखा दो, ये खुद-बखुद उस पर चल पड़ेंगी। सिरिल तुम्हारे ही शब्दों पर विश्वास कर मैंने यह कदम उठाया है।"

सिरिल ने उसे ध्यान से देखा—यह वही बुज़दिल और कायर श्रीकान्त था, जिसके पास कभी आंसुओं के सिवाय कुछ नहीं था। आज उसी श्रीकान्त ने उसी की शिक्षा और उपदेश के सहारे उसे ही लूट लिया था। उसे लगा, उसके अपने उपदेशों और भाषणों ने ही उसके प्रेम का मजाक उड़ाया है। फिर भी उसने श्रीकान्त के कंधे पर हाथ रखकर कहा—"जिस बहादुरी का तुमने परिचय दिया है, ईश्वर तुम्हारे विश्वास में अमरता भर दे।"

श्रीकान्त ने कहा—"मां के बाद यह बहुत ज्यादा अकेली हो गयी थी। एक अकेली औरत और चारों तरफ दरिन्दे। सब कुछ बहुत जल्दी में हो गया। तुम्हारी गैर-हाज़री का मुझे दुख रहा, मुझे उम्मीद है तुम मुझे क्षमा कर दोगे।"

—"क्षमा किस बात की श्रीकान्त ? मैं ही उपस्थित नहीं था, यह मेरा अपराध है।"—सिरिल ने कहा।

श्रीकान्त ने घूमकर सन्नो को देखा—"तुम इनसे आशीर्वाद लो, मैं

मां के पैर छूकर आता हूं।—और श्रीकान्त सीढ़ियां चढ़ने लगा।

—"सन्नो !"—सिरिल का स्वर थरथराया।

—"अब इस हमदर्दी की कोई जरूरत नहीं। तुमने कहा था, वक्त का इन्तजार करो। मगर सिरिल, मैंने उसी दम तुमसे कहा था कि वक्त का तुम इन्तजार कर सकते हो, लेकिन वक्त किसी का इन्तजार नहीं करता है। और तुम में तो सिर्फ इन्तजार करने की आदत पड़ गयी है, क्योंकि तुम उन लोगों में से हो जो आदर्श, समाज और धर्म के नाम पर बड़ी-बड़ी बातें तो करते हैं, मगर अपनी ताकत से वक्त को अपने मुनासिब नहीं बना सकते।"

सिरिल ने सिर झुका लिया।

—"ख़फा हो गये ? लेकिन नहीं, जब तुम नाराज रहते हो, तो मुझ पर थूकते हो। मगर सिरिल, जरा हकीकत तो देखो···औरत बंसी हुआ करती है। मर्द उसे होठों से लाकर फूंकता है। कोई सुर में बजती है, तो कोई बेसुरी हो जाती है। लेकिन मैं···मैं बंसी नहीं, मैं तो मुरली हूं। एकदम आड़ी तिरछी। तुम टेर भी लेते तो मिठास नहीं निकाल पाते, और एक दिन हार कर होठों से दूर फेंक देते, क्योंकि तुमसें हिम्मत की निहायत कमी है।"

सिरिल ठगा-सा रह गया। कांपती आवाज में सन्नो ने कहा—"मेरी नस-नस में तुम्हारा प्यार ज़हर की तरह पैठ गया है सिरिल, इससे मैं इन्कार नहीं करती और अब तो यह भी सच है, कि मुझे तुमसे कोई लगाव नहीं···कोई प्यार नहीं···बल्कि नफरत है। और शायद नफरत भी नहीं। तुम यह समझ लो सिरिल, याद की कंघी से कोई दांत टूट गया। प्यार की अंगूठी से वादे का कोई नग उतर गया। किसी औरत ने याद की कंघी से इश्क के बालों को झाड़ा, कंघी में लगे बालों से गोली बनायी और थूक कर बाहर फेंक दिया···लेकिन सिरिल, कोई-कोई औरत ऐसी भी होती है जो उन बालों को बाहर फेंकने के बजाय रेशमी थैली में सम्भाल कर रख लेती है···"

—"क्या मतलब ?"

सन्नो की पलकें भींग गयीं। उसने शादी के जोड़े से आंखें पोंछते

हुए कहा—"अब, मतलब-वतलब ख़ाक होगा ! समझ लो, कभी भूले से बचपन में मैंने कोई कच्चा आम तोड़कर खा लिया था और फिर उसका खट्टा-कसैला रस मुंह में रह गया···बस ! लेकिन मुझे उन पर नाज़ है। हम गिरी हुई पतिताओं को उठाने के लिये उन्होंने 'गायिका-रक्षा-समिति' बनायी। हजार-लाख जिल्लतें सहीं। फिर छापा पड़ा। सरकार ने हमें छोड़ देने का वादा इस शर्त पर किया कि अगर हमारा शौहर जमानत पर ले जाये तो···'लेकिन यही मर्द—जो पुलिस हैं, हमारे कस्बे में हैं, हमारे बाप और भाई हैं, जो हमारे बदन से खेलने वाले हैं, हमें उठने नहीं देते और एक दिन, सारा का सारा इल्जाम सरकार के सिर चला जाता है। हमने सरकार की सलामती की दुआएं मांगीं, क्योंकि सरकार हमें उठाना चाहती है। और हमारे मन में उम्मीद की एक लौ जली कि लाख-लाख कसमें खाने वाले, हमारे चाहने वाले हमारी जमानत लेकर, हमें जेल से छुड़ाकर ले जायेंगे। लेकिन हमारी इज्जत से खेलने वाले भला क्योंकर अपनी इज्जत पर आंच आने देते !"

सिरिल ने सिर उठाकर इस नयी सन्नो को देखा।

—"जानते हो सिरिल, जब थानेदार साहब ने बुलाकर मुझसे कहा···'बेटी, थानेदार के साथ-साथ मैं एक इन्सान भी हूं···तुमसे इतना ही कहूंगा, कि तुम्हारे पति ने तुम्हारी जमानत ली है, उनके विश्वास का खून मत करना···मेरा आशीर्वाद है तुम्हारे साथ···' तो सिरिल, मुझ पर हजार खुशियां बरस गयीं। मुझे लगा···तुम लौट आये हो। और मैं भागकर तुम्हारे लिये ! मगर अम्मा से मालूम हुआ, तुम नहीं लौटे··· मैं चौंकी—तो फिर पति बनकर मेरी जमानत किसने ली ? तभी श्रीकान्त एकदम से आगे बढ़ आये, मेरी मांग में सिन्दूर भरकर कहा—'यह काम थाने में भी हो सकता था···मगर मैं चाहता था, ये सब कुछ मां के सामने हो···' मैं उनके पैरों पर झुक गयी—'आप मेरे बारे में कुछ भी नहीं जानते···' उन्होंने मुझे उठाते हुए कहा—'ये सच है कि श्रीकान्त ठीक तरह से सन्नो को नहीं जानता था। मगर अब, मांग में सिन्दूर भर कर यह जान गया है कि सन्नो उसकी पत्नी है···और एक पति के लिए इतना ही जानना काफी होता है।"

—"और सिरिल, मैं ठगी-सी खड़ी रही। मेरी आंखें बन्द थीं, मगर कानों में तुम्हारे अल्फ़ाज गूंज रहे थे—यही वो आदमी है, जो मेरे ख्वाबों को सही शक्ल दे सकता है। यह बहुत ही जिन्दादिल इन्सान है। इस पर मैं उतना ही विश्वास करता हूं, जितना तुम अपने खुदा पर···फिर मैं इन्कार नहीं कर सकी, क्योंकि उस दम मुझे लगा था कि तुम अगर शादी कर भी लेते, तो बाद में आने वाली दिक्कतों का सामना नहीं कर सकते···क्योंकि तुम बुज़दिल हो, तुममें हिम्मत की कमी है। तुम सरे-बज़्म किसी से क्या कहते, जबकि अपनी मां तक से मेरे बारे में कह न सके···"

सिरिल जैसे बर्फ का टुकड़ा···गलकर धीरे-धीरे पानी बनने लगा···

सन्नो उसके और करीब आ गयी—"मेरी दोस्ती का वास्ता है सिरिल, ऐसे उदास न हो! ये सच है कि तुममें जज्बातों की कमी नहीं। पास तुम्हारे अल्फाजों के खजाने हैं, भाषणों के अम्बार। मगर जरा सच्चाई के आईने में भी तो झांक कर देखो, आज के जमाने में सिर्फ उपदेश और तकरीर की जरूरत नहीं। आज तो काम करने का हौसला चाहिये, वक्त से टकराने की ताकत चाहिये···ये सब कुछ मेरे श्रीकान्त के पास है, मेरे शौहर के पास है···गुजरी यादों का वास्ता है तुम्हें, श्रीकान्त बनने की कोशिश करना। इस जमाने में श्रीकान्त जी सकता है, दूसरों को जीने का हक दे सकता है···मगर सिरिल जैसे लोगों को जीने का कोई हक नहीं, जो न खुद जीते हैं···न अपनी बहन के लिये किसी पादरी के खिलाफ लड़ सकते हैं···जो समाज से डरते हैं, डरते हैं···सिर्फ डरते हैं···"

तभी श्रीकान्त सीढ़ियों से उतर कर उनके करीब आ गया। उसने सिरिल के कंधे पर हाथ रखकर कहा—"अच्छा, अब आज्ञा दो, बन्धु। सन्नो के छोटे-छोटे भाई-बहन डोली के अन्दर प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

सिरिल कुछ भी नहीं कह सका।

उसने केवल इतना अनुभव किया कि जाते-जाते सन्नो हर तरफ यादों की खुशबू छोड़ गयी है···उसे लगा, उसका व्यक्तित्व मिट्टी का बना हुआ था, जो बाढ़ के पानी में बह गया। या फिर वह खुद मोम

का टुकड़ा था, जो जरा सी आंच पाकर गल गया ।

सन्नो की सिसकियां अब भी उभर रही थीं···उसने घूम कर बाहर की तरफ देखा—डोली उठी···कहार 'सपनों का संसार' उठा कर ले चले और उसे अपना पुरस्कृत चित्र याद आने लगा—'डोली और दुलहन। ···फूल-सी नाजुक नारी । पलकों में बोलते हुए आंसू। हथेली पर मुस-कुराती हुई महेंदी । मांग में लजाता हुआ सिन्दूर···चार कहारों के कंधों पर जिन्दगी, जा रही है, किसी दूसरे को नया जीवन देने। और करीब ही खड़ी है एक दीवार···गिरती हुई । बिल्कुल अकेली···पराजिता-सी ।'

सिरिल की आंखों में आंसू भर आये ।

वह भारी कदमों से सीढ़ियां चढ़ने लगा···उसके कानों में सन्नो की आवाजें गूंजने लगीं···'किसी औरत ने याद की कंघी से इश्क के बालों को झाड़ा···उसमें लगे बालों की गोली बनायी और थूक कर बाहर फेंक दिया···मगर कोई-कोई औरत ऐसी भी होती है, जो उन बालों को बाहर फेंकने के बजाय रेशम की थैली में सम्भाल कर रख लेती है···'

सिरिल को ऊपर पहुंचने का अहसास तब हुआ, जब मां की आवाज उसके कानों में पड़ी—"अरे तू आ गया ! बहुत दिन लगा दिये ?"

सिरिल ने बोझिल पलकों से मां को देखा ।

—"काम हो गया ?"

—"कौन-सा ?"

—"सन्नो तो कह रही थी कि तू जरूरी काम से गया है। ऐसा भी क्या जरूरी काम आ गया था कि मुझे बिना बताये ही जाना पड़ा ?"

सिरिल ने कोई जवाब नहीं दिया ।

कमरे में एक गहरी खामोशी भर गयी ।

मां ने ही चुप्पी तोड़ी—"चल, अब हाथ-मुंह धोकर कुछ खा ले ।"

सिरिल ने कोई उत्तर नहीं दिया ।

वह धीरे-धीरे इवा के ड्रॉअर की तरफ बढ़ गया। उसने धीरे से ड्रॉअर खोला । उससे एक लिफाफा निकाल कर, उसने ढेर-सारे चित्र मेज पर छितरा दिये—"मां, तुम बराबर कहा करती थीं न कि तुम्हें बहू चाहिये···अब···अब मैं शादी करने के लिये तैयार हूं ।"

मां पास पड़ी चारपायी पर बैठ गयीं। उन्होंने सिर उठाकर सिरिल को देखा। फिर धीरे से बोलीं—"तू कोई भी पसन्द कर ले बेटे।"

—"नहीं मां, तुम्हारी पसन्द की बहू आयेगी।"

मां की सिसकी आहिस्ता-आहिस्ता कमरे में भर गयी। सिरिल को लगा, मां का दिल टूट गया है। उसने उठकर उन्हें बांहों में भर लिया—"नहीं मां, सिर्फ तुम्हारी पसन्द की बहू आयेगी इस घर में।"

डूबते स्वर में मां बोलीं—"बेटे, अब मेरी पसन्द क्या! जिसे तेरे लिये पसन्द कर रखा था···वह तो विदा हो गयी। कब तक बैठी रहती भला! श्रीकान्त की मां सचमुच एक महान औरत रही होगी, जिसके हिन्दू बेटे ने एक मुसलमान तवायफ को अपनी बीबी बनाया···"

सिरिल को लगा, नींद ने अपने हाथों ही सपनों का कटोरा उठा कर दूर फेंक दिया है। ऊपर आले पर रखे किसी खूबसूरत खिलौने को किसी बच्चे ने डर से मांगा नहीं, और कोई दूसरा उठा कर चला गया।

मां ने फिर टूटती आवाज में कहा—"बेटे, अब तेरे लिये पत्नी आयेगी, मेरे लिये बहू नहीं! सन्नो लाख बुरी थी, मगर हजार भली थी। सुख-दुख सबमें हाथ बंटाती थी। मैं तुझसे बार-बार कहना चाहकर भी कह न सकी···तुझे धर्म, समाज और दस लोगों की चिन्ता रहती है न···तू क्योंकर राजी होता! ···जा, जिसे भी पसन्द कर रखा है, ले आ···मैं उफ तक नहीं करूंगी!"—और वे चारपायी से उठकर, भारी कदमों से सीढ़ियां उतरने लगीं। एक-एक कदम सिरिल को अपनी छाती पर गुजरता महसूस हुआ।

एक कोने में रखे ग्राउंड किये हुए कैन्वस को उसने भीगी पलकों से देखा। उस सादे से कपड़े पर विधाता ने सन्नो, मां, श्रीकान्त और उसे लेकर एक बड़े ही मार्मिक चित्र की रचना कर दी थी। उस खाली कैन्वस पर उसकी आंखें ठहर गयीं। आंसू का एक मोती टप् से झर गया, जैसे अंगूठी से कोई नग उतर गया, जैसे कंघी से कोई दांत टूट गया, जैसे दीवार से नींव की कोई ईंट निकल गयी···। □

क

अ

व

स